अध्याय 3

अंग्रेजी साम्राज्य का प्रतिकार एवं संघर्ष

पश्चिमी देशों ने अपने आर्थिक उद्देश्यों को पूरा करने की दृष्टि से अलग–अलग देशों में अपने उपनिवेश बनाये और बाद में अपना साम्राज्य स्थापित किया। भारत में ब्रिटिश उपनिवेशवाद की शुरुआत छल कपट अत्याचार व शोषण से हुई। भारत प्राचीन काल से ही एक समृद्धशाली देश रहा है। अतः विश्व के अन्य देशों के साथ ही अंग्रेजों की भारत पर सदैव निगाहें रही हैं। शीघ्र ही वे व्यापारी से शासक बन गए। अंग्रेजों के कारण भारत की सामाजिक, आर्थिक व सांस्कृतिक व्यवस्थाओं को आधारभूत क्षति पहुँची।

1757 ई. से 1857 ई तक स्वतंत्रता की चेतना

23 सितम्बर 1600 ई. को ब्रिटेन के प्रमुख व्यापारियों ने एक संयुक्त पूंजी उद्यम के रूप में ''दी गवर्नर एण्ड कम्पनी ऑफ मर्चेन्टस ऑफ लन्दन ट्रेडिंग इन टू दी ईस्ट इण्डीज" के नाम से ब्रिटिश इस्ट इण्डिया कम्पनी शुरू की। 31 दिसम्बर 1600 ई. को एलिजाबेथ प्रथम ने इस कम्पनी को पूर्व के साथ व्यापार करने का अधिकार पत्र दिया। 1612 ई. में सूरत में ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने स्थायी व्यापारिक कोठी स्थापित की। 1604 ई. में मद्रास (चेन्नई) में फोर्ट सेन्ट जार्ज किले का निर्माण किया। 1717 ई. में मुगल बादशाह फर्रूखशियर से एक फरमान प्राप्त कर कम्पनी ने 38 गांवों की जमींदारी प्राप्त कर ली। तीन हजार रूपये नजराने के बदले में कम्पनी के माल को सीमा शुल्क से मुक्त कर दिया और चुंगी शुल्क मुक्ति के लिए अंग्रजों को 'दस्तक' (विशेष अनुमति पत्र) जारी करने का अधिकार दे दिया। कम्पनी ने अपना ध्यान बंगाल पर अधिक केन्द्रित किया।

चित्र 3.1 : प्लासी का युद्ध

1757 ई. से पूर्व अंग्रेजों ने अन्य यूरोपीय कम्पनियों को पराजित कर अपनी सर्वोच्चता स्थापित कर ली। मुगलों से फरमान प्राप्त करने के बाद ईस्ट इण्डिया कम्पनी का बंगाल में हस्तक्षेप बढ़ गया। 10 अप्रैल 1756 ई. को बंगाल के नवाब अली वर्दी खां की मृत्यु हो गई। उसका उत्तराधिकारी छोटी पुत्री का पुत्र सिराजुद्दौला नवाब बना। जबकि पूर्णिया का गर्वनर शौकत जंग भी नवाब बनना चाहता था। अंग्रेजों ने अवसर का लाभ उठाकर नवाब के विरोधियों को संरक्षण देना प्रारम्भ कर दिया। आर्थिक मामलों को लेकर नवाब और अंग्रेजों के मध्य काफी मतभेद हो गये। जिसके परिणामस्वरूप 23 जून 1757 ई को प्लासी का युद्ध हुआ जिसमें अंग्रेजो की विजय हुई और नवाब मारा गया। अंग्रेजों ने बंगाल का नवाब "मीर जाफर" को बना दिया, जिससे बंगाल में अंग्रेजों की सर्वोच्चता स्थापित हो गई।

1760 ई. में जब मीर जाफर अंग्रेजों की धनापूर्ति नहीं कर सका तो अंग्रजों ने मीर कासिम को बंगाल का नवाब बना दिया। नवाब बनने के बाद मीर कासिम ने बंगाल में प्रशासनिक पुनर्ग्रहण का प्रयास किया लेकिन भ्रष्टाचार व ब्रिटिश हस्तक्षेप के कारण उसे सफलता नहीं मिली। आर्थिक मामलों एवं विभिन्न सुविधाओं को लेकर मीर कासिम व अंग्रेजों के मध्य मतभेद बढ़ते गये। जिसके परिणामस्वरूप 22 अक्टूबर 1764 को बक्सर का युद्ध हुआ, जिसमें नवाब की पराजय हुई और अंग्रेजों की विजय हुई। यह युद्ध भारतीयों के लिए अधिक घातक सिद्ध हुआ। इस युद्ध के बाद अंग्रेजों को बंगाल, बिहार और उड़ीसा के दीवानी अधिकार अंग्रेजों को प्राप्त हो गये। इससे भारत के उद्योगों और व्यापार को भी हानि पहुँची।

अंग्रेजों का मराठा व मैसूर से संघर्ष–

18 वीं शताब्दी में भारत में मराठा शक्ति एक प्रमुख शक्ति के रूप में स्थापित हो चुकी थी लेकिन 14 जनवरी 1761 के पानीपत के युद्ध में बाद मराठों की शक्ति कमजोर हो गई। अंग्रेजों को भारत पर अधिकार करने से रोकने वाली चुनौती मराठा ही थे। अब अंग्रेज मराठों को अपने अधीन करने का अवसर तलाश रहे थे। 1772 ई. पेशवा माधवराव की मृत्यु के बाद उसका भाई नारायण पेशवा बना लेकिन पूर्व पेशवा का चाचा रघुनाथ राव पेशवा बनना

चित्र 3.2

चाहता था। अंग्रेजों को अब मराठा राज्य में फूट डालने का अवसर मिल गया। अंग्रेजों और रघुनाथ राव के मध्य 6 मार्च, 1775 ई. को सूरत की संन्धि हुई, जिसमें अंग्रेज, रघुनाथ राव को पेशवा बनने में मदद करेंगें और पेशवा अंग्रेजों को बेसिन, सालसेट व सूरत की लगान का आधा भाग देगा। इस प्रकार रघुनाथ राव की महत्वाकांक्षा तथा बम्बई सरकार द्वारा उसके साथ की गई सन्धि ने मराठों और अंग्रेजों के मध्य संघर्ष को अनिवार्य बना दिया।

प्रथम आंग्ल मराठा युद्ध :–

1775 ई. से 1782 ई. के मध्य अंग्रेजों और मराठों के मध्य संघर्ष चला। इस संघर्ष में ब्रिटिश सेना, संगठित मराठा सेना से परास्त हुई और 29 जनवरी 1799 ई ''बडगॉव'' की अपमानजनक सन्धि करनी पड़ी, जिसमें अंग्रेजों द्वारा विजित प्रदेश मराठों को वापस लौटाने तथा रधुनाथ राव को पूना दरबार के हवाले करने तथा अंग्रेजों द्वारा 41000 रू युद्ध हर्जाने के रूप में देना तय हुआ।

द्वितीय अंग्रेज मराठा संघर्ष :–

यह संघर्ष 1802 से 1805 तक चला, इस संघर्ष का कारण लार्ड वेलेजली की साम्राज्यवादी महत्वाकांक्षा तथा मराठा सरदारों का आपसी द्वेष रहा। इस संघर्ष में मराठा सरदारों ने अलग–अलग अंग्रेजों से युद्ध किया और पराजित हुए। दक्षिण भारत में भौंसले ने संघर्ष किया और 1803 ई. में अमर गॉव के युद्ध में पराजित होने पर 17 दिसम्बर 1803 ई. को अंग्रेजों से देवगॉव की सन्धि कर ली। लालवाडी के युद्ध में सिन्धिया पराजित हुआ और 30 दिसम्बर 1803 ई. में 'सुर्जी अर्जुन गॉव' की सन्धि हुई। होल्कर और अंग्रेजों के मध्य संघर्ष अनिर्णित रहा लेकिन दोनों पक्षों के मध्य जनवरी 1806 ई. को 'राजघाट' की सन्धि हुई जिसके अनुसार होल्कर ने चम्बल नदी के उत्तरी क्षेत्र पर अपना अधिकार छोड दिया तथा राजपूताने में आन्तरिक हस्तक्षेप नहीं करने का वचन दिया।

तृतीय अंग्रेज मराठा संघर्ष :–

भारत में अंग्रेजों की सर्वश्रेष्ठता बनाये रखने के लिए 13 जून 1817 को पेशवा के साथ तथा 5 नवम्बर 1817 ई. को सिंधिया को अंग्रेजों के साथ अपमानजनक सन्धि करनी पड़ी। इन अपमानजनक बन्धनों को तोड़ने के लिए मराठों ने संघर्ष आरम्भ कर दिया, लेकिन पेशवा की किर्की भोंसले की सीतवर्डी तथा होल्कर की महींदपुर स्थान पर पराजय हुई। 18 जून 1818 को मेल्काम ने पेशवा के साथ सन्धि की। जिसके अनुसार पेशवा पद समाप्त कर दिया तथा 8 लाख की पेंशन देकर बिठूर भेज दिया, जहॉ पर 1852 ई में मृत्यु हो गई। इस प्रकार अंग्रेजों ने अपनी कूटनीति, 'फूट डालो राज करो' की नीति से मराठों को संघर्ष में पराजित कर दिया।

आंग्ल–मैसूर संघर्ष :–

1761 ई. में हैदर अली ने मैसूर के राजा नंदराज से सत्ता छीन ली और सर्वेसर्वा बन गया। 1776 ई. को मैसूर के राजा की मृत्यु के बाद अपने को शासक घोषित कर दिया। अंग्रेजों की साम्राज्यादी महत्वाकांक्षा में हैदर अली खटकने लगा। अतः अंग्रेजों ने मराठों और निजाम के साथ मिल कर हैदर अली के विरूद्ध संगठन बनाया लेकिन हैदर अली ने कूटनीति से मराठों को युद्ध में तटस्थ कर दिया और निजाम को प्रादेशिक लोभ देकर अपनी ओर मिला लिया। 1767 में हैदर अली ने ब्रिटिश प्रभाव वाले क्षेत्रों पर आक्रमण कर दिया। अन्त में अंग्रेज पराजित हुए, लाचार अंग्रेजों को हैदर अली के साथ 4 अप्रैल 1769 ई. को "मद्रास की सन्धि" करनी पड़ी। इस संधि के अनुसार एक दूसरे के जीते हुए प्रदेश वापस लौटा दिये।

द्वितीय आंग्ल–मैसूर संघर्ष :–

अंग्रेज प्रथम संघर्ष की हार का बदला लेना चाहते थे, हैदर अली अंग्रेजों के गुंटूर पर अधिकार से नाराज था। अतः हैदर अली ने निजाम व मराठो के साथ मिलकर अंग्रेजों के विरूद्ध युद्ध किया। जुलाई 1780 में युद्ध प्रारम्भ हो गया। हैदर अली को सफलता मिल रही थी, लेकिन 7 दिसम्बर 1782 को हैदर की मृत्यु हो गई तथा कार्यभार उसके पुत्र टीपू सुल्तान पर आ गया। टीपू ने एक वर्ष तक युद्ध जारी रखा, लेकिन दोनों पक्षों ने युद्ध से पेरशान होकर 11 मार्च 1784 ई. को मंगलौर की सन्धि कर ली और एक दूसरे के विजित प्रदेश वापस कर दिये। अंग्रेजों ने मैसूर के मामले में दखल नहीं देने का वचन दिया।

तृतीय अंग्रेज–मैसूर संघर्ष :–

तृतीय आंग्ल–मैसूर संघर्ष का कारण, अंग्रेज मैसूर का प्रभाव समाप्त करना चाहते थे दूसरी ओर टीपू मालाबार की सुरक्षा

हेतु कोचीन में स्थित डच दुर्ग क्रागनूर व आइकोट को खरीदना चाहता था। लेकिन अंग्रेज समर्पित, ट्रावनकोर के राजा ने इन्हें खरीद कर टीपू को नाराज कर दिया। अप्रैल 1790 ई. में टीपू ने ट्रावनकोर पर आक्रमण कर दिया। कार्नवालिस ने विशाल सेना के साथ मैसूर पर आक्रमण कर दिया। टीपू ने वीरतापूर्वक मुकाबला किया लेकिन अन्त में 23 फरवरी 1792 ई. को श्रीरंगपट्टनम की संधि करनी पड़ी। इस संधि से मैसूर का आधा भाग चला गया और युद्ध क्षति के रूप में तीन करोड़ की राशि अंग्रेजों को देनी पड़ी तथा अपने दो पुत्रों को बंधक के रूप में अंग्रेजों के पास रखना स्वीकार करना पड़ा।

चतुर्थ आंग्ल—मैसूर युद्ध :—

1798 ई. में ईस्ट इण्डिया कम्पनी का गवर्नर बन लार्ड वेलेजली भारत आया। वेलेजली एक साम्राज्यवादी गर्वनर जनरल था। उसने निश्चय किया कि टीपू को पूर्णतया समाप्त कर दिया जाये अथवा उसे पूर्णतया अपने अधीन कर लिया जाये। इस उद्देश्य की पूर्ति करने के लिये वेलेजली ने सहायक संधि करने का सहारा लिया। टीपू सुल्तान ने सहायक संधि को अस्वीकार कर दिया। अप्रैल 1799 ई. में टीपू के विरूद्ध अभियान प्रारम्भ कर दिया। 4 मई, 1799 को श्रीरंगपट्टनम का दुर्ग जीत लिया तथा मैसूर की स्वतन्त्रता समाप्त हो गई। टीपू संघर्ष करता हुआ मारा गया।

अंग्रेजों का पंजाब के साथ संघर्ष :—

अफगानिस्तान के शासक ने रणजीत सिंह को पंजाब का गर्वनर बनाया। रणजीत सिंह सतलज नदी के पूर्व में स्थित प्रान्तों पर अधिकार करना चाहता था, जबकि इस क्षेत्र पर अंग्रेज अपना आधिपत्य चाहते थे। फरवरी 1809 ई. में अक्टर लोनी ने सतलज के पूर्वी प्रदेशों पर अंग्रेजी नियन्त्रण की घोषणा कर दी और कहा कि लाहौर की ओर से कोई आक्रमण हुआ तो उसे सैनिक बल से रोका जायेगा। महाराजा ने मात खाई और 25 अप्रैल 1809 ई. को रणजीत सिंह व अंग्रेजों के मध्य अमृतसर की सन्धि हुई। जिसमें सतलज नदी के पूर्वी तट के राज्यों पर अंग्रेजी नियन्त्रण स्वीकार कर लिया।

रणजीत सिंह के समय तक अंग्रेजों के साथ संबंध शान्तिपूर्ण बने रहे। 27 जून 1839 ई. को रणजीत सिंह की मृत्यु हो गई तो सरदारों की महत्वंकाक्षायें व स्वार्थ के कारण दरबार में दलबन्दी प्रारम्भ हो गई। खड़क सिंह राजा बना, लेकिन वह कुशल प्रशासक नहीं था, जिससे दरबार में डोगरा बन्धुओं का हस्तक्षेप बढ़ गया। अंग्रेजों ने इस अराजकता का लाभ उठाया और ऐसी परिस्थिति पैदा कर दी की दोनों के मध्य युद्ध प्रारम्भ हो गया।

प्रथम अंग्रेज सिक्ख संघर्ष :—

अंग्रेजों की स्रामाज्यवादी महत्वकांक्षा तथा अंग्रेजों की फूट डालो और राज करो की नीति प्रथम अंग्रेज सिक्ख संघर्ष का कारण रही। प्रथम मुठभेड़ के बाद 13 दिसम्बर 1845 में लार्ड हार्डिंग ने सिक्खों के विरूद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। 10 फरवरी 1846 के सबराओं के युद्ध में सिक्खों की निर्णायक हार हुई। 13 फरवरी 1846 को अंग्रेजों ने लाहौर पर अधिकार कर लिया। 1 मार्च 1846 को लाहौर की सन्धि हुई जिसमें जालन्धर दोआब अंग्रेजी राज्य में मिला लिया गया तथा एक करोड़ पचास लाख की राशि युद्ध क्षति के रूप में सिक्खों को अंग्रेजों को देनी थी। सिक्ख सेना की संख्या सीमित कर दी गई। हार्डिंग पंजाब प्रशासन पर दलीप सिंह के वयस्क होने तक अधिकार रखना चाहता था अतः 26 दिसम्बर 1846 ई. को भैरोंवाल की एक पूरक सन्धि की जिसमें अंग्रेज पंजाब के एक भाग के स्वामी बन गये।

द्वितीय आंग्ल—सिक्ख संघर्ष व पंजाब का अंग्रेजी राज्य में विलय :—

द्वितीय आंग्ल सिक्ख संघर्ष का कारण 1847—48 में अंग्रेजों द्वारा पंजाब में सारे ऐसे सुधार करना जो सिक्ख विरोधी थे, फौज से मुक्त किये गये सैनिकों का असन्तोष तथा रानी जिन्दा के अधिकारों का छिन जाना व उसकी बदला लेने की चाहत थी। रेजीडेन्ट का अत्यधिक आन्तरिक हस्तक्षेप व डलहोजी की पंजाब को अंग्रेजी शासन की चाहत ने द्वितीय आंग्ल—सिक्ख संघर्ष अनिवार्य कर दिया।

10 अक्टूबर 1848 ई. को गवर्नर जनरल डलहोजी ने सिक्खों के साथ अन्तिम युद्ध करने की घोषणा के साथ ही युद्ध प्रारम्भ हो गया और 13 मार्च 1849 को शेर सिंह, छतर सिंह, मूलराज आदि सिक्खों के समर्पण के साथ ही युद्ध समाप्त हो गया। डलहौजी ने 29 मार्च 1849 ई. को एक घोषणा द्वारा पंजाब को ब्रिटिश भारत में विलय कर लिया। इसी घोषणा से पंजाब के स्वतन्त्र राज्य का अस्तित्व समाप्त हो गया।

1857 का स्वतन्त्रता संघर्ष:—

1857 ई. से पूर्व लगातार 100 वर्षों तक ईस्ट इण्डिया कम्पनी को भारत के प्रान्तीय राज्यों, देशी रियासतों, किसानो, जनजातियों आदि का प्रतिरोध सहन करना पड़ा। लेकिन 1857 ई. में अंग्रेजों को पहली बार भारतीयों के संगठित विरोध का सामना करना पडा। लेकिन अंग्रेजों ने कूटनीति एवं आपसी फूट का लाभ उठाकर इस प्रतिरोध को विफल कर दिया, परन्तु उनको अपनी नीति में परिवर्तन के लिए मजबूर होना पड़ा।

स्वतंत्रता संघर्ष का स्वरूप :—

इस प्रथम स्वाधीनता संघर्ष के स्वरूप के बारे में विद्वानों में मतभेद हैं, जहाँ अंग्रेजी और यूरोपीय इतिहासकार इसे 'सिपाही विद्रोह' व सामन्ती प्रतिक्रिया अथवा मुस्लिम षडयंत्र का परिणाम बताते हैं, वहीं भारतीय इतिहासकार व विद्वानों का मानना है कि यह सैनिक असन्तोष से प्रारम्भ होकर, शीघ्र ही इस संघर्ष ने पहले जन विद्रोह के रूप में व्यापकता प्राप्त की। बाद में इस संघर्ष ने राष्ट्रीय विद्रोह व स्वतन्त्रता संग्राम का रूप ले लिया। सुरेन्द्र नाथ सेन ने लिखा है कि ''यह युद्व धर्म के नाम पर प्रारम्भ हुआ था और स्वतन्त्रता संग्राम में जाकर समाप्त हुआ। डॉ. विनायक दामोदर सावरकर ने अपनी पुस्तक (भारत का स्वातंत्र्य समर) वार ऑफ इण्डियन इण्डिपेन्डेस'' में इस युद्ध को भारत का स्वतन्त्रता संग्राम

बताया।

स्वतन्त्रता संघर्ष के कारण :—

01. अंग्रेजों की आर्थिक नीति,

02. लार्ड डलहौजी का हड़प सिद्वान्त

03. अंग्रेजों की साम्राज्य विस्तार की नीति

04. सामाजिक, धार्मिक, सैनिक कारण।

स्वतन्त्रता संघर्ष का प्रारम्भ एवं प्रसार :— सैनिकों के चर्बी वाले कारतूसों के प्रयोग से मना करने पर अनुशासनहीनता का अपराध लगा कर उनको दण्ड दिया गया। 29 मार्च, 1857 को बैरकपुर की छावनी में सैनिक मंगल पाण्डे ने विद्रोह कर एक अधिकारी की हत्या करा दी। ब्रिटिश अधिकारियों ने 34 वीं एन. आई. रजिमेन्ट को तोड़ दिया और भारतीय सैनिकों को दण्ड दिया गया। मई 1857 ई. में छावनी में 85 सैनिकों ने चर्बी युक्त कारतूसों को प्रयोग करने से मना करने पर सैनिक न्यायालय ने दीर्धकालीन कारावास का दण्ड दिया। 10 मई को सैनिकों ने खुला विद्रोह कर दिया और अपने अधिकारियों की गोली मार कर हत्या कर दी। अपने सैनिक साथियों को मुक्त करवाकर वे लोग दिल्ली की ओर चल पड़े। सैनिकों ने 12 मई को दिल्ली पर अधिकार कर लिया। बहादुरशाह द्वितीय को भारत का सम्राट घोषित कर दिया। दिल्ली हाथ से निकल जाना अंग्रेजों के लिए एक भारी क्षति थी। क्रान्ति शीघ्र ही लखनऊ, इलाहाबाद, कानपुर, बरेली, बनारस, बिहार के कुछ भाग, झांसी और अन्य क्षेत्रों में भी फैल गई।

अंग्रेजों ने दिल्ली पर पुनः अधिकार करने के लिए पंजाब से सेनाएँ बुलाई। भारतीय सैनिकों ने घोर युद्व किया लेकिन अन्त में सितम्बर 1857 ई. में अंग्रेजों ने दिल्ली पर पुनः अधिकार कर लिया। इस युद्ध में अंग्रेज अधिकारी जॉन निकलसन' मारा गया। सम्राट को बन्दी बना लिया गया। दिल्ली के निवासियों से प्रतिशोध लिया गया। लेफ्टिनेन्ट हडसन ने सम्राट के दो पुत्रों व एक पोते की गोली मार कर हत्या कर दी।

4 जून 1857 ई. को लखनऊ में क्रान्ति हो गई, भारतीय सैनिकों ने रेजीडेन्सी को घेर लिया जिसमें ब्रिटिश रेजिडेन्ट हेनरी लारेन्स की मृत्यु हो गई। हेवलॉक और आउटड्रम ने लखनऊ को पुनः जीतने का प्रयास किया लेकिन असफल रहे। नवम्बर 1857 ई. में मुख्य सेनापति सर कॉलिन कैम्पबेल ने गोरखा रेजीमेन्ट की सहायता से नगर में प्रवेश किया। मार्च 1858 ई. को नगर पर अंग्रेजों का पुनः अधिकार हो गया।

5 जून 1857 ई. को क्रन्तिकारियों ने कानपुर पर अधिकार कर नाना साहिब को पेशवा घोषित कर दिया। जनरल सर ह्यू व्हीलर जो छावनी कमाण्डर थे, उन्होनें 27 जून को आत्म—समर्पण कर दिया। पेशवा नाना साहिब का साथ तात्या टोपे ने दिया। 6 दिसम्बर 1857 को सर कैम्पबेल ने कानपुर पर पुनः अधिकार कर लिया। तात्या टोपे भाग निकले और झांसी चले गये।

जून 1857 में झांसी में क्रान्ति हो गई। रानी लक्ष्मी बाई को रियासत का शासक घोषित कर दिया। सर ह्यूरोज ने झांसी पर आक्रमण करके अप्रैल 1858 को पुनः उस पर अधिकार कर लिया। झांसी पर अधिकार हो जाने पर रानी तथा तात्यां टोपे ने ग्वालियर की ओर अभियान किया, जहाँ भारतीय सैनिकों ने उनका स्वागत किया। परन्तु सिन्धिया ने राजभक्त रहने का निश्चय किया और आगरा में शरण ली। ग्वालियर पर जून 1858 ई में अंग्रेजों ने पुनः अधिकार कर लिया। 17 जून 1858 को रानी लक्ष्मी बाई ब्रिटिश सेना से संघर्ष करती हुई वीरगति को प्राप्त हो गई। तात्यां टोपे फिर बच निकले परन्तु अप्रैल 1859 ई. में उन्हें सिन्धिया के एक सामन्त ने पकड़ लिया और अंग्रेजों के सुपूर्द कर दिया और अंग्रेजों ने उसे फाँसी दे दी।

बिहार में इस क्रान्ति का नेतृत्व जगदीशपुर के जमीदार 80 वर्षीय कुँवर सिंह ने किया। कुँवर सिंह ने अंग्रेज सेनापति मिलमेल, कर्नल डेक्स, मार्क और मेजर डालस को धूल चटाई। अप्रैल 1858 में पुनः अपनी रियासत पर अधिकार कर लिया। 26 अप्रैल 1858 ई. को कुँवर सिंह ने अंग्रेजों से युद्ध किया लेकिन सफलता नहीं मिली। बरेली में बहादुर खान ने क्रान्ति में भाग लिया। बनारस में भी क्रान्ति हुई लेकिन कर्नल नील ने उसे दबा दिया।

उत्तर भारत की अपेक्षा दक्षिण भारत में सैनिक क्रान्तिकारियों की संख्या कम थी, फिर भी इस महान संघर्ष में दक्षिण भारत के भी अनेक क्रान्तिकारी शहीद हुए, सजाएँ भुगतीं एवं बन्दी बनाये गये। 1857 ई. के स्वतन्त्रता संग्राम के दक्षिणी भारत के प्रमुख नेतृत्व करने वालों में रंग बापू जी गुप्ते (सतारा), सोना जी पण्डित, रंगाराव पांगें व मौलवी सैयद अलाउद्दीन (हैदराबाद) भीमराव व मुंडर्गी छोटा सिंह (कर्नाटक), अण्णाजी फड़नवीस (कोल्हापुर), गुलामगौस व सुल्तान बख्श (मद्रास), अरणागिरी व कृष्णा (चिगलफुट), मुलगाबल स्वामी (कोयम्बटूर), मुल्ला सनी, विजय कुदारत (केरल), आदि विशेष उल्लेखनीय है।

इस प्रकार 1857 का स्वतन्त्रता संघर्ष सम्पूर्ण राष्ट्र में व्याप्त रहा था तथा इस संघर्ष में सैनिकों के साथ सभी क्षेत्र, भाषा, धर्म, एवं जाति के लोगों तथा कृषकों व जमींदारों ने भाग लिया।

जनजातीय आन्दोलन

23 जून 1757 ई. को प्लासी के युद्ध के बाद ईस्ट इंडिया कंपनी ने बंगाल पर अपना नियंत्रण स्थापित कर लिया। 1764 ई. के बक्सर युद्ध के बाद ईस्ट इण्डिया कम्पनी की भारत को अंग्रेजी उपनिवेश में बदलने की प्रकिया प्रारम्भ हो गई। इस उपनिवेशिकरण की प्रकिया ने ही जनविद्रोहों को जन्म दिया, जिनमें जनजातीय आन्दोलन भी हैं। जनजातीय आन्दोलनों का कारण जनजातीय लोगों द्वारा अपनी स्वतन्त्रता के खो जाने, स्वशासन में विदेशी हस्तक्षेप, प्रशासनिक परिवर्तनों का होना, अत्यधिक करों की माँग, अर्थव्यवस्था का भंग होना आदि माना जाता है।

बंगाल तथा पूर्वी भारत में जनजातीय विद्रोह :–

1. सन्यासी विद्रोह :– बंगाल पर अंग्रेजी राज्य स्थापित होने के बाद जब 1769–70 ई. में भीषण अकाल पडा, उधर कम्पनी के पदाधिकारियों ने कर भी कठोरता के साथ वसूले। सन्यासी कृषि करने के साथ–साथ धार्मिक यात्राएँ भी नियमित करते थे। तीर्थ स्थानों पर आने जाने पर प्रतिबन्ध लगाने से सन्यासी लोग नाराज हो गये। इन सन्यासियों की अन्याय के विरूद्ध लडने की परम्परा भी रही थी और उन्होंने जनता के साथ मिलकर कम्पनी की कोठियों तथा कोषों पर आक्रमण कर लूट लिए। ये लोग कम्पनी के सैनिकों के विरूद्ध बहुत वीरता से लड़े, लेकिन वारेन हेस्टिंग ने एक लम्बे अभियान के बाद इस विद्रोह को दबा दिया, जिसका उल्लेख बंकिम चन्द्र चटर्जी के उपन्यास 'आनन्द मठ' में मिलता है।

2. कोल विद्रोह :– अंग्रेजी प्रशासनिक जटिलताओं, कठोर भूमिकर व्यवस्था तथा स्थानीय शासक वर्गों के उपेक्षापूर्ण व्यवहार ने जिस शोषण को जन्म दिया था, उसके खिलाफ कोल जनजाति ने विद्रोह किया। यह विद्रोह तब अधिक बढ गया, जब 1831 ई. में

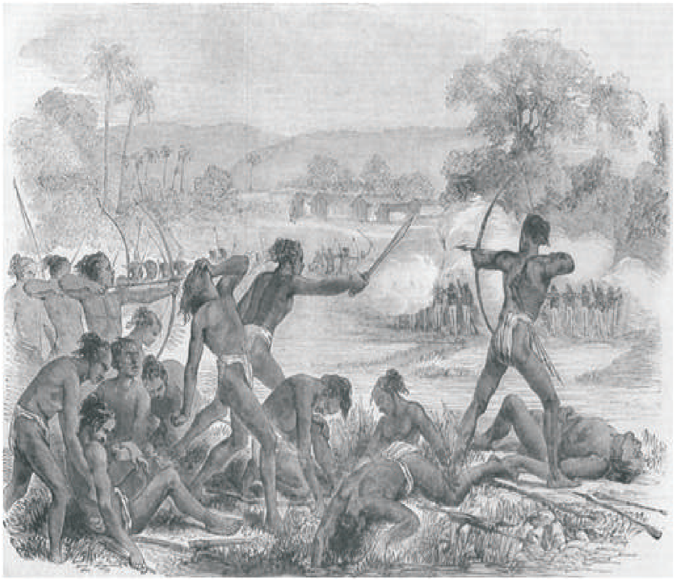

चित्र 3.4

उनकी भूमि उनके मुखिया मुण्डों से छीनकर बाहरी लोगों को दे दी गई। इस विद्रोह में हिंसा व्यापक स्तर पर हुई। यह विद्रोह रांची, सिंहभूम हजारीबाग, पलामाऊ तथा मानभूमि के पश्चिमी क्षेत्रों में फैल गया। एक दीर्घकालीन तथा विस्तृत सैन्य अभियान के पश्चात् ही यहां शान्ति स्थापित हो सकी। कलकत्ता स्थित कौंसिल के अध्यक्ष मेटकॉफ ने यह स्वीकार किया कि इस विद्रोह में अंग्रेज विरोधी भावना बहुत स्पष्ट थी।

3. संथाल विद्रोह :– 1855–56 ई. के बीच शुरू होने वाला संथाल विद्रोह अंग्रेजी शासन के खिलाफ महत्वपूर्ण जन विद्रोह था। इसमें नेतृत्व और संगठन को एक सुव्यवस्थित स्तर पर देखा जा सकता है। यह विद्रोह वीरभूमि, बाकुरा, सिंहभूमि, हजारी बाग, भागलपुर और मुंगेर के इलाकों में फैला हुआ था। इस विद्रोह का कारण संथाल लोगों पर भूमिकर अधिकारियों द्वारा दुर्व्यवहार किया जाना, पुलिस का दमन तथा जमीदारों तथा साहूकरों द्वारा जबरदस्ती वूसली किया जाना था। इस विद्रोह का नेतृत्व दो भाई सिंधु और कान्हू द्वारा किया गया और इन्होंने कम्पनी के शासन का अन्त करने की घोषणा कर अपने आपको स्वतन्त्र घोषित कर दिया। विस्तृत सैन्य कार्यवाही के पश्चात ही 1856 ई. में स्थिति नियन्त्रण में आई तथा सरकार को स्वतन्त्र पृथक संथाल परगना बनाना पड़ा।

4. भील विद्रोह :–

भील जनजाति पश्चिमी तट के खानदेश नामक इलाके में रहती थी। 1812–19 तक इन लोगों ने अपने नये स्वामी अंग्रेजों के विरूद्ध विद्रोह कर दिया। कम्पनी अधिकारियों का मानना था कि इस विद्रोह को पेशवा बाजीराव द्वितीय तथा उसके प्रतिनिधि त्रिक्बकजी दांगलिया ने प्रोत्साहित किया था। वास्तविक कारण कृषि संबंधी कष्ट तथा नई सरकार से भय था। अंग्रेजी सेना की अनेक टुकड़ियाँ इसको दबाने में लगी थी। उन्होंने 1825 ई. में सेवरम के नेतृत्व में पुनः विद्रोह किया तथा 1831 ई. तथा 1846 ई. में पुनः विद्रोह किये गये।

5. रमोसी विद्रोह :–

पश्चिमी घाट में रहने वाली एक जनजाति रमोसी थी। वे अंग्रेजी प्रशासन पद्धति तथा अंग्रेजी प्रशासन से बहुत अप्रसन्न थे। 1822 ई. में उनके सरदार चित्तर सिंह ने विद्रोह कर दिया तथा सतारा के आसपास के प्रदेश लूट लिए। 1825–26 ई. में पुनः विद्रोह हुए। अधिक सैन्य बल से ही अंग्रेज इन विद्रोह को दबाने में सफल हुए।

क्रान्तिकारी संगठनों का स्वतन्त्रता संघर्ष में योगदान

भारत के लोगों ने कभी हृदय से अंग्रेजी दासता को स्वीकार नहीं किया। 1757 ई. से भारत के स्वतंत्र होने तक संघर्ष करते रहें। 1857 ई. में विशाल स्तर पर होने वाला धमाका अंग्रेजी सत्ता को हिलाने वाला सिद्ध हुआ। 19 वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से 20 वीं शताब्दी में स्वतन्त्रता प्राप्ति तक क्रान्तिकारी बलिदानों ने खून से आजादी का इतिहास लिखा।

क्रान्ति कारी आन्दोलन के उत्थान के मुख्यतः वही कारण थे जिनसे आन्दोलन में उग्रपंथ का उदय हुआ। 1857 ई. में कड़े संघर्ष के पश्चात् अंग्रेज सत्ता पुनः स्थापित कर पाये। लेकिन लार्ड कर्जन की प्रतिक्रियावादी नीतियों ने क्रान्तिकारी आन्दोलन करने के लिए भारतीयों को बाध्य किया। 1905 ई. के बंग–भंग की चोट से प्रत्येक स्वाभिमानी भारतीय भड़क उठा। सरकार का दमन और साथ में जनता को कुशल नेतृत्व देने में नेताओं की असफलता के कारण उपजी कुंठा ने क्रान्तिकारी आन्दोलन को जन्म दिया।

क्रान्तिकारी यह विश्वास करते थे कि राष्ट्रीय जीवन में जो भी उपयुक्त तत्त्व हैं, जैसे कि धार्मिक तथा राजनैतिक स्वतन्त्रताएँ, नैतिक मूल्य तथा भारतीय संस्कृति, को विदेशी शासन समाप्त कर देगा। अतः सभी क्रान्तिकारियों का एक ही उद्देश्य था मातृभूमि को विदेशी शासन से मुक्त कराना।

महाराष्ट्र में क्रान्तिकारी आन्दोलन :–

महाराष्ट्र में क्रान्तिकारी गतिविधि का प्रारम्भ 1876 में वासुदेव बलवन्त फड़के नामक सरकारी कर्मचारी ने किया। उन्होंनें सन 1876 ई. में महाराष्ट्र में पड़ने वाले भयंकर अकाल से उत्पन्न प्रजा के कष्टों को दूर करने के लिए अंग्रेजी सरकार की नौकरी छोड़ दी और स्थान–स्थान पर भाषण देकर अंग्रेज सरकार को उखाड़ फेंकने के लिए महाराष्ट्र की जनता को प्रोत्साहित किया। फड़के के भाषणों से उत्तेजना फैलने लगी और 1879 ई. में फड़के को गिरफ्तार कर के अदन (अरब देश) की जेल में भेज दिया, जहां 1889 में स्वर्गवास हो गया।

चापेकर बन्धुओं द्वारा रैण्ड की हत्या :–

पुणे (महाराष्ट्र) के चापेकर बन्धुओं– दामोदर हरि चापेकर, बालकृष्ण हरि चापेकर तथा बासुदेव हरि चापेकर ने क्रान्तिकारी आन्दोलन को दिशा दी। 1893 ई. में ''हिन्दु धर्म संरक्षण सभा'' बनाई। इसके अन्तर्गत शिवाजी उत्सव व गणेश उत्सव मनाने प्रारम्भ किये और लोगों के अन्दर देशभक्ति और उत्साह की भावना उत्पन्न की। 1897 में पुणे में प्लेग रोग महामारी के रूप में फैला, पूना के प्लेग कमिश्नर रैंड व लेटिसेन्ट एयर्स्ट प्लेग पीडितों की मदद की बजाय आतंक ज्यादा फैला रहे थे। ये दोनों अधिकारी बदनाम, कठोर व कुचक्र रचने वाले थे। सम्पूर्ण पूना नगर इनके अत्याचारों से त्रस्त था अतः चापेकर बन्धुओं ने दोनों की 22 जून 1897 को हत्या की थी। चापेकर बन्धुओं को गिरफ्तार कर लिया गया और फांसी की सजा दी गई।

श्यामजी कृष्ण वर्मा तथा लन्दन में इण्डिया हाऊस की स्थापना :–

श्यामजी कृष्ण वर्मा पश्चिमी भारत के काठियावाड़ प्रदेश के रहने वाले थे। उन्होंने केम्ब्रिज विश्वविद्यालय से शिक्षा प्राप्त की और बैरिस्टर बन गये। भारत लौटने पर अंग्रेज पोलिटिकल रेजिडेंटो के आचरण से दुःखी होकर भारत को स्वतन्त्र कराने का दृढ निश्चय किया और अपना कार्य क्षेत्र लन्दन नगर को बनाया। देश से बाहर स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिये क्रान्तिकारी संगठन स्थापित करने की पहल श्यामजी कृष्ण वर्मा ने ही की। 1905 ई में भारत स्वशासन समिति का गठन किया जिसे इण्डिया हाउस की संज्ञा दी जाती है। इन्होंने एक मासिक पत्रिका ''इण्डिया सोशलिज्म'' भी प्रारम्भ की। इन्होंने विदेश आने वाले भारतीयों के लिए एक–एक हजार की 6 फैलोशिप भी प्रारम्भ की। शीघ्र ही ''इण्डिया हाउस'' लन्दन में रहने वाले भारतीयों के लिए आन्दोलन करने का एक केन्द्र बन गया। वी0डी0 सावरकर, लाला हरदयाल और मदन लाल धींगरा जैसे क्रान्तिकारी इसके सदस्य बन गये। श्यामजी वर्मा की गतिविधियों को देख कर अंग्रेज सरकार ने उनके विरूद्ध कार्यवाही शुरू कर दी। वे भारत छोड़ कर पेरिस चले गये और वहां से क्रान्तिकारी गतिविधियों को जारी रखा।

विनायक दामोदर सावरकर :–

वीर सावरकर महान क्रान्तिकारी, महान देश भक्त और महान संगठनवादी थे। उन्होंने आजीवन देश की स्वतन्त्रता के लिए जो तप और त्याग किया उसकी प्रशंसा शब्दों में नहीं की जा सकती है। सावरकर को जनता ने वीर की उपाधि से विभूषित किया अर्थात् वे वीर सावरकर कहे जाते थे। वीर सावरकर का जन्म 28 मई 1883 ई. को भागुर गॉव (महाराष्ट्र) में हुआ। 1901 में मैट्रिक पास कर

चित्र 3.6 : विनायक दामोदर सावरकर

फर्ग्यूसन कॉलेज में दाखिला लिया जहां वे लोकमान्य तिलक के सम्पर्क में आये। बंगाल विभाजन के समय उन्होंने अपने साथियों के साथ ''मित्र मेला'' नामक संगठन बनाकर विदेशी कपडों की होली जलाई। जिस कारण उन्हें कॉलेज से निष्कासित कर दिया। सावरकर एकमात्र ऐसे क्रान्तिकारी थे जिन्हें ब्रिटिश सरकार ने एक जन्म की नहीं दो जन्मों की आजीवन कारावास की सजा दी थी। उनकी पुस्तक (द इण्डियन वार ऑफ इंडिपेंडेंस) प्रकाशन से पूर्व ही ब्रिटिश सरकार ने जब्त कर ली थी। यह पुस्तक गुप्त रूप से विभिन्न शीर्षकों के नाम से भारत पहुँची थी। उन्होंने 1906 ई. में ''अभिनव भारत'' की स्थापना की। सावरकर पहले व्यक्ति थे जिन्होंने 1857 के संघर्ष को गदर न कहकर भारत का प्रथम स्वतन्त्रता का युद्ध बताया। सावरकर का लम्बा समय अण्डमान की सेलूलर जेल में बीता। 1924 ई. में स्वास्थ्य खराब होने के बाद रत्नागिरी में नजर बन्द रखा गया। 1937 में जेल से मुक्त

कर दिया गया। उन्होंने भारत के विभाजन को रोकने के भी अथक प्रयास किये।

बंगाल में क्रान्तिकारी आन्दोलन :—

बंगाल में क्रान्तिकारी आन्दोलन का सूत्रपात श्री पी0 मिश्रा ने एक क्रान्तिकारी संगठन ''अनुशीलन समिति'' का गठन कर किया। बंगाल में राजनैतिक जागृति बंगाल विभाजन के बाद आई। अब आन्दोलन का उद्देश्य विभाजन को रद्द करवाना ही नहीं अतिपु स्वराज्य की प्राप्ति बन गया। 1905 ई में वारिन्द्र कुमार घोष ने '' भवानी मन्दिर'' नामक पुस्तक लिखकर क्रांतिकारी कार्यों को संगठित करने की विस्तृत जानकारी दी थी। 'युगान्तर' और 'संध्या' नाम की पत्रिकाओं में भी अंग्रेज विरोधी विचार प्रकाशित किये जाने लगे। एक अन्य पुस्तक ''मुक्ति कौन पाथे'' (मुक्ति किस मार्ग से) में सैनिकों से भारतीय क्रान्तिकारियों को हथियार देने का आग्रह किया।

किसान आन्दोलन

प्राचीन कृषि व्यवस्था को अंग्रेजों द्वारा बनाई गई नवीन प्रशासनिक व्यवस्था व कृषि नीतियों द्वारा धीरे–धीरे तोड़ा जा रहा था। अंग्रेजों की इस नई व्यवस्था ने नये प्रकार के भूमिपति उत्पन्न कर दिये जिससे ग्रामीण भारत में एक नया समाज उभर कर आया। सरकारी कर अत्यधिकता तथा जमीदारों द्वारा कर का अत्यधिक भाग लेने के कारण किसान साहूकारों तथा व्यापारियों के चंगुल में फंसते चले गये। अंग्रेजों द्वारा बनाये गये इस नये भूमिपति वर्ग व परजीवी बिचौलिये, लोभी व भ्रष्ट साहूकारों ने मिलकर किसानों को अधिकाधिक गरीब बना दिया। 19 वीं शताब्दी तक किसान इस स्थिति में आ गये कि वह अंग्रेजी शासन, स्थानीय शोषणकारियों तथा पूँजीपतियों से निबट कर सामन्तशाही बन्धनों को तोड़ना अथवा ढीला करना चाहते थे।

किसान आन्दोलन के कारणः—

1. अंग्रेज सरकार की प्रशासनिक भू कर नीतियाँ।
2. बार–बार लम्बे काल तक अकाल पड़ना।
3. किसानों से जमीदारों, सामन्तों द्वारा अत्यधिक कर वसूलना।
4. व्यापारियों, साहूकारों द्वारा चंगुल में फंसाकर झूठे दस्तावेज तैयार करना।

प्रमुख किसान आन्दोलन :—

1. बंगाल में नील उगाने वालो किसानों का विद्रोह :—यह विद्रोह अंग्रेज भूपतियों के विरूद्ध किया गया था। इस विद्रोह में किसानों का साथ जमीदारों, साहूकारों, धनी किसानों व सभी ग्रामीण वर्ग ने दिया। 19 वी शताब्दी में कुछ कम्पनी के अवकाश प्राप्त यूरोपीय अधिकारियों ने बंगाल तथा बिहार के जमीदारों से भूमि प्राप्त कर नील की खेती करना आरम्भ कर दिया। इन्होंने किसानों से ऐसी शर्तों पर नील की खेती करने को बाध्य किया जो किसानों के लिए लाभकारी नहीं थी। अप्रैल 1860 ई. में बारासात उपविभाग तथा पावना और नादिया जिलों के समस्त किसानों ने हड़ताल कर दी और नील बोने से इनकार कर दिया। यह हड़ताल बंगाल के अनेक क्षेत्रों में फैल गई। सरकार को व्यापक असंतोष से बचने के लिए 1860 ई. में एक नील आयोग नियुक्त करना पडा।

2. 1875 ई. दक्षिण के विद्रोह :— दक्षिण के विद्रोह का कारण अत्यधिक भूमि कर, कपास के भाव कम हो जाना मराठा किसानों से अत्यधिक कर लिया जाना। मारवाड़ी और गुजराती साहूकारों द्वारा लालच के कारण लेखों में हेरा फेरी करने तथा अनपढ किसानों से बिना जानकारी के हस्ताक्षर करा लेते, जिससे दीवानी न्यायालयों में फैसले इन साहूकारो के पक्ष में जाने से किसान बेदखल हो जाते थे। 1875 ई. में किसानों ने पूना जिले के साहूकरों के मकानों तथा दुकानों पर आक्रमण कर दिये और जिन लेख पत्रों पर साहूकरों ने किसानों के हस्ताक्षर करा रखे थे उन्हें जला दिया गया। बाद में यह विद्रोह अहमदनगर तक फैल गया तथा पुलिस और सेना बुला कर ही यह विद्रोह दबाया जा सका। सरकार ने उपद्रवों के कारण जानने के लिए दक्कन उपद्रव आयोग नियुक्त किया तथा 1879 ई. में कृषक राहत अधिनियम पारित किया। जिसमें किसानों द्वारा ऋण न लौटाने पर गिरफ्तार अथवा जेल में बन्द नहीं किया जा सकता था।

3. पंजाब में किसान आन्दोलनः— पंजाब का आम किसान ऋणग्रस्त था और उसकी भूमि पर गैर किसान वर्ग का कब्जा हो गया था। इस भूमि हस्तान्तरण को रोकने के लिए सरकार पंजाब भूमि अन्याक्रमण अधिनियम (Panjab land Alienation Act 1900) लेकर आई।

4. चम्पारण किसान आन्दोलनः— उत्तर बिहार के चम्पारन जिले में यूरोपीयन नील के उत्पादक बिहारी किसानों पर अत्याचार करते थे। इसका विरोध करने के लिए गांधीजी ने बाबू राजेन्द्र प्रसाद की सहायता से किसानों की वास्तविक स्थिति की जॉच की। किसानों को अहिंसात्मक आन्दोलन करने के लिए कहा, लेकिन बाद में जून 1917 में एक जॉच समिति बनाई। जिसकी रिपोर्ट पर चम्पारन कृषि अधिनियम पारित किया गया, जिसके द्वारा नील किसानों से जबरदस्ती नील की खेती कराना बन्द कर दिया गया।

5. खेड़ा किसान आन्दोलनः— यह आन्दोलन बम्बई सरकार के विरूद्ध था। 1818 ई. की बसन्त ऋतु में फसलें नष्ट हो गईं लेकिन फिर भी बम्बई सरकार भूमि कर मांग रही थी, जबकि भूमि कर नियमों में यह स्पष्ट था कि फसल साधारण से 25 प्रतिशत से कम हो तो भूमिकर में पूर्णतया छूट मिलेगी, सरकार छूट देने को तैयार नहीं थी। गाँधीजी ने कृषकों को संगठित कर सत्याग्रह किया। अन्त में सरकार को गाँधीजी की बात स्वीकार करनी पड़ी।

6. अन्य संगठित प्रयासः— अखिल भारतीय स्तर पर किसान आन्दोलन चलाने के लिए 11 अप्रैल 1936 को लखनऊ में अखिल भारतीय किसान सभा का गठन किया। किसान सभा ने आन्ध्र प्रदेश में जमीदारों के खिलाफ भूमि व्यवस्था विरोधी आन्दोलन किया। तथा 1936 में बिहार में बकाश्त (स्वयंजोती) हुई भूमि के विरूद्ध आन्दोलन किया। 18 अक्टूबर 1937 को किसान सभाओं ने सत्याग्रहियों पर हुए अत्याचार के विरूद्ध कृषक दिवस मनाया।

राजनैतिक आन्दोलन 1857—1919

1857 के स्वतन्त्रता संघर्ष की असफलता के बाद स्वतन्त्रता संधर्ष का नेतृत्व भारत के सभी भागों में भारत के आधुनिक शिक्षा प्राप्त करने वाले भूपतियों और सम्पन्न वर्ग के हाथों में आ गया था। ये वर्ग अपनी मांगों के लिए संसद को स्मरण पत्र, प्रार्थना पत्र देते थे, साथ ही देश के लिए पढे लिखे लोगों को संगठित करने, अंग्रेजों द्वारा वर्तमान काल में कर रहे शोषण की जानकारी देकर जागृत कर रहे थे। इस काल के प्रारम्भिक नेतृत्व करने वाले लोगों को इग्लैण्ड के उदारवादी लोगों पर विश्वास था। ये लोग इंग्लेण्ड के उदारवादियों को भारत की वस्तुस्थिति भारतीयों की आंकाक्षाओं तथा भारत में संवैधानिक और प्रशासनिक सुधारों के लिए तैयार करना चाहते थे, साथ ही अंग्रेजो द्वारा किये जाने वाले शोषण और अत्याचारों की जानकारी अधिकाधिक लोगों को देकर आन्दोलन का विस्तार करना तथा देश के सभी क्षेत्रों, वर्गों तथा धर्मों को मानने वाले लोगो को संगठित करना चाहते थे।

1858 ई. के बाद राजनैतिक चेतना का प्रचारः—

भारतीयों की धीरे—धीरे राजनैतिक आकांक्षाये बढने लगी। सिविल सर्विस में स्थान ही नहीं नियंत्रण करने की आकांक्षा की जाने लगी। अब भारत में जनता के द्वारा चुनी हुई और उसके प्रति उतरदायी सरकार की मांग की जाने लगी। 1868 में बंगाल के प्रमुख अखबार हिन्दू पेट्रियट के सम्पादक क्रिस्टो दास पाल ने ऐसी मांग की। 1874 ई. में उन्होंने भारत के लिए स्वराज्य शीर्षक से लिखे लेख में भारतीयों द्वारा भारतीयों के लिए संवैधानिक सरकार के प्रारम्भ की बात की थी।

उस समय जो राजनैतिक संगठन भारत में थे वे इस प्रकार की प्रगतिशील माँग और उसके लिए संघर्ष करने के लिए तैयार नहीं थे। इसके लिए बंगाल के कुछ विद्वानों, चिन्तको ने 1875 में इण्डियन लीग की स्थापना की। इसका उद्देश्य भारतीयों में राष्ट्रवाद का भाव जागृत करने तथा राजनैतिक चेतना जागृत करना था। सार्वजनिक चेतना के द्वारा प्रारम्भ होने वाला यह पहला राजनैतिक संगठन था।

इण्डियन एसोसियेशनः—

इस संस्था की स्थापना के अगले वर्ष 1876 ई. में सुरेन्द्र नाथ बनर्जी के नेतृत्व में कलकत्ता के अल्बर्ट हाल में लगभग 800 प्रमुख लोगों ने भाग लिया, जिसमें यह तय हुआ कि संगठन समान राजनैतिक विचार रखने वाले लोगों को एक मंच पर लाएगा व सामान्य जनता को संगठित करेगा।

इण्डियन नेशनल कांग्रेसः—

1858 ई. के बाद भारत में चल रहे राजनैतिक विकास का ही परिणाम इण्डियन नेशनल कांग्रेस था, जिसकी स्थापना एक अंग्रेज भारतीय सिविल सेवा के सेवानिवृत्त अधिकारी एलेन ओक्टेवियन हूम (Allen Octavion Hume) ने की थी। इसकी स्थापना के पीछे ब्रिटिश सरकार की सोच थी कि एक ऐसा संगठन बनाया जाये जिससे भारतीयो के मन में क्या है इसकी जानकारी ब्रिटिश सरकार को मिलती रहे तथा इसके सम्मेलनों में राजनैतिक नेताओं के मन की भड़ास निकल जायेगी तथा उन्हें अंग्रेजी शासन को हटाने के सशक्त प्रयास करने से भी रोका जा सकेगा। 28 दिसम्बर 1885 ई. को व्योमेश चन्द्र बनर्जी की अध्यक्षता में बम्बई के गोकुल दास तेजपाल संस्कृत कालेज में प्रथम अधिवेशन प्रारम्भ हुआ जिसमें 72 प्रतिनिधियों ने भाग लिया। अधिवेशन में कांग्रेस के चार उद्देश्य बताये गये—

1. राष्ट्र की उन्नति के लिए प्रयत्न में लगे लोगों को आपस में परिचित होने का अवसर देना।
2. आने वाले वर्षों के कार्यक्रम पर विचार करना।
3. ब्रिटिश साम्राज्य के प्रति पूरी निष्ठा और भक्ति रखते हुए इंग्लैण्ड की संसद द्वारा तय किये गये सिद्धान्तों के विरूद्ध किये जाने वाले भारत सरकार के कार्यों का विरोध।
4. अप्रत्यक्ष रूप से यह संगठन भारतीय संसद का रूप ग्रहण करेगा तथा इस बात का उचित जवाब देगा कि अंग्रेजों की यह सोच कि भारत के चुने हुए प्रतिनिधि शासन व्यवस्था करने की योग्यता नहीं रखते हैं। कांग्रेस के काल को दो चरणों में बांटा जा सकता है। प्रथम चरण 1885—90 ई. तक जिसे उदारवादी राजनीति अथवा राजनीतिक भिक्षावृति का युग कहा गया है। दूसरा चरण 1905 से 1919 का काल जिसे अतिवादियों अथवा अतिवादी राजनीति का काल कहा गया है।

कांग्रेस के प्रथम चरण के उदारवादी नेता दादा भाई नौरोजी, फिरोज शाह मेहता, दीनशा वाचा, व्योमेश और सुरेन्द्र नाथ बैनर्जी कांग्रेस की राजनीति पर छाये हुए थे। ये लोग उदारवादी तथा परिमित राजनीति में विश्वास करते थे। ये लोग अपनी राजनीति की व्याख्या "उदारवाद और संयम" (Liberalism and moderation) के समन्वय से करते थे। ये लोग भारतीयों के लिए धर्म और जाति के पक्षपात का अभाव मानव में समानता, कानून के सामने बराबरी, नागरिक स्वतन्त्रताओं का प्रसार और प्रतिनिधि संस्थाओं के विकास की इच्छा करते थे। इस काल में कांग्रेस पर समृद्धिशाली, मध्यवर्गीय, बुद्धिजीवियों का जिनमें वकील, डॉक्टर, इंजीनियर, पत्रकार और सहित्यक व्यक्ति सम्मिलित थे, का अधिकार था। इस काल में कांग्रेस में आने वाले प्रतिनिधि बड़े—बड़े नगरों से आते थे और इनका जनसाधारण से कोई सम्पर्क नहीं था। उदारवादी अंग्रेजी साम्राज्य के बने रहने अपितु उसको सुदृढ करने के पक्ष में थे। उन्हें डर था कि अंग्रेजों के जाने पर अव्यवस्था फैल जायेगी। अंग्रेजी राज्य शान्ति और व्यवस्था का द्योतक था और भारत में बहुत लम्बे समय तक इसका बना रहना आवश्यक है। उदारवादियों का विश्वास था कि अंग्रेज न्यायिक लोग हैं, वे भारत के साथ न्याय ही करेंगे। भारतीयों की शिकायतें अंग्रेज नौकरशाही के कारण अथवा अंग्रेजों को हमारी शिकायतों की पूरी जानकारी न होने के कारण से है। यही कारण रहा कि इन लोगों ने इंग्लैड में प्रचार की ओर अधिक ध्यान दिया। इस काल में कांग्रेस ने देश की स्वन्त्रता की मांग नहीं की, केवल भारतीयों के लिए कुछ रियायातों की मांग की।

दूसरा चरण : गरम पंथी राष्ट्रवादी आन्दोलन का प्रारम्भ :— उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम बीसवीं शताब्दी के

प्रारम्भिक वर्षों में गरम पंथी राष्ट्रवादी विचार के लोगों का कांग्रेस में प्रभाव बढने लगा। कांग्रेस में फूट की प्रक्रिया उस समय आरम्भ हो गई जब लोकमान्य तिलक का समाज सुधार के प्रश्न पर गरम पंथी दल अथवा सुधारकों का झगड़ा हो गया। तिलक का कहना था कि स्वराज्य के बिना कोई सामाजिक सुधार नहीं हो सकते, न कोई प्रगति, न कोई उपयोगी शिक्षा, न ही राष्ट्रीय जीवन की परिपूर्णता। चार प्रमुख कांग्रेस नेता– लोकमान्य तिलक, विपिन चन्द्र पाल, अरविन्द घोष और लाला लाजपत राय ने इस आन्दोलन का मार्गदर्शन किया। इस गरमपंथी आन्दोलन के कार्यक्रमों में विदेशी माल का बहिष्कार और स्वदेशी माल को अंगीकार करने तथा राष्ट्रीय शिक्षा और सत्याग्रह पर बल दिया गया।

भारतीय उद्योगों को प्रोत्साहन देना जिससे भारतीयों को कार्य तथा सेवा का अवसर मिल सके। सरकारी नियन्त्रित शिक्षा संस्थाओं के स्थान पर एक राष्ट्रीय शिक्षा योजना बनाई जाये तथा विद्यार्थियों को देश सेवा में लगाया जाये।

स्वशासन आन्दोलन :–

1915 से श्रीमती एनीबेसेन्ट ने आइरिस होम रूल लीग के नमूने पर होम रूल लीग स्थापित करने की घोषणा की। 1916 में तिलक ने पूना में अपनी होम रूल लीग स्थापित की। दोनों संस्थायें तालमेल से कार्य कर रही थीं। इनका उद्देश्य अंग्रेजी साम्राज्य के भीतर स्वायत्तता की मांग को लोगों तक पहुँचाना था।

राजनैतिक आन्दोलन 1919 से 1947

रोलेट एक्ट :– प्रथम विश्व युद्ध समाप्ति के बाद ब्रिटिश सरकार ने यह आश्वासन दिया कि भारतीयों को अधिकाधिक सुविधायें दी जायेंगी। लेकिन युद्ध की समाप्ति के बाद किये गये सुधार सन्तोषप्रद नहीं थे बल्कि इसके विपरीत आर्थिक शोषण, प्रेस के कठोर नियम व अन्य दमनकारी गतिविधियां मिली। भारतीय जनता अंग्रेजों के विरोध में डटी हुई थी। सरकार को षडयंत्र का भय था अतः सरकार ने 1917 ई. में सिडनी रोलेट की अध्यक्षता में एक समिति गठित की, जिसके द्वारा बनाये गये बिल को विधानमण्डल ने 19 मार्च 1919 को पास कर दिया। इस एक्ट के अन्तर्गत किसी भी व्यक्ति को संदेह के आधार पर गिरफ्तार किया जा सकता था। उसे न कोई अपील, न दलील और न कोई वकील का अधिकार था। इसे काला कानून कहा गया।

जलियांवाला बाग हत्याकाण्ड :–

13 अप्रैल 1919 को रोलेट एक्ट के विरोध में अमृतसर के जलियांवाला बाग में एक सभा आयोजित की गई जिसमें 20 हजार आदमी इकठ्ठे हुए, जिनमें स्त्री, पुरूष व बच्चे भी थे। जनरल डायर ने उसमें प्रवेश किया और गोली चलाने का हुक्म दिया और गोलियां तब तक चलती रहीं जब तक कारतूस खत्म नहीं हो गयें। सरकार के अनुसार 379 व्यक्ति मारे गये, जबकि कांग्रेस समिति के अनुसार मरने वालों की संख्या 1000 के लगभग थी।

असहयोग एवं खिलाफत आन्दोलन :–

खिलाफत आन्दोलन भारतीय मुसलमानों द्वारा तुर्की के खलीफा के सम्मान में चलाया था। तुर्की का खलीफा मुस्लिम जगत का धार्मिक रूप से प्रमुख था। 19 अक्टूबर 1919 को पूरे देश में खिलाफत दिवस मनाया गया। गाँधीजी भी इस आन्दोलन में शामिल हुए और ''केसर–ए–हिन्द'' की उपाधि को लौटा दिया। इस आन्दोलन की समाप्ति 10 अगस्त 1920 को सेव्र की संधि से हुई जिसमें तुर्की का विभाजन कर उसे धर्म निरपेक्ष राष्ट्र घोषित कर खलीफा के पद को समाप्त कर दिया।

असहयोग आन्दोलन :–

रोलेक्ट एक्ट, जलियांवाला बाग हत्याकाण्ड,हण्टर कमेटी की रिपोर्ट, तुर्की विभाजन, खलीफा का पद समाप्त करना आदि से गाँधी जी अत्यधिक पीड़ित हुए। 1920 में कांग्रेस ने अन्यायी सरकार से असहयोग करने का प्रस्ताव पारित किया। इसके अन्तर्गत सरकारी उपाधियों को छोड़ने, विधानसभाओं, न्यायालयों, सरकारी शैक्षणिक संस्थाओं, विदेशी माल इत्यादि का त्याग करना तथा कर न देना शामिल था। इसके विपरीत अपने आप को अनुशासन में रखना, राष्ट्रीय शिक्षण संस्थाओं की स्थापना करना, आपसी झगड़ें पंच निर्णय द्वारा तय करना, हाथ से कते और बुने कपड़ें का प्रयोग करना इत्यादि कार्य करने थे। 1921 ई. में इस आन्दोलन के अन्तर्गत लगभग 30000 व्यक्ति जेल गये। भारतीय इतिहास में यह पहला अवसर था जब स्वराज्य के लिए संघर्ष में इतनी अधिक जनता ने भाग लिया। परन्तु जब यह आन्दोलन शिखर पर था तभी 5 फरवरी 1922 ई. को उत्तर प्रदेश के गोरखपुर जिले में चौरी–चोरा नामक स्थान पर शान्तिपूर्ण जुलूस पर पुलिस द्वारा अत्याचार करने पर भीड़ ने पुलिस चौकी को आग लगा दी, जिसमें 21 सिपाही एक थानेदार की मौत हो गई। गाँधी जी ने आन्दोलन को हिंसात्मक होते देख 12 फरवरी 1922 को यह आन्दोलन वापस ले लिया। गाँधी जी की इस घोषणा से देश के बड़े नेता आश्चर्यचकित रह गये। सुभाष चन्द बोस ने इसे अत्यन्त कष्ट दायक कहा। मोतीलाल नेहरू और चितरंजन दास ने कांग्रेस के अन्तर्गत स्वराज पार्टी का गठन किया, जिसने विधान परिषदों में भाग लेकर सरकार के कार्यों में रूकावट डालने का कार्य किया।

साइमन कमीशन :–

1919 के भारत सरकार अधिनियम के कार्यों की समीक्षा करने के लिए ब्रिटिश सरकार ने 1927 ई में सर जॉन साइमन की अध्यक्षता में एक कमीशन बनाया। इसमें सात सदस्य थे लेकिन इसमें कोई भी भारतीय नहीं था। 3 फरवरी 1928 ई. जब यह कमीशन बम्बई पहुँचा, तो इस का जबरदस्त विरोध किया गया। लाहौर में इसका विरोध लाला लाजपतराय के नेतृत्व में किया गया। विरोध कर रहे लोगों पर पुलिस ने अन्धाधुन्ध लाठियों की वर्षा की जिसमें लाला लाजपत राय के सीने में चोटें आई और एक महीने बाद उनका देहान्त हो गया। 1930 को इस कमीशन की रिपोर्ट आई जिसमें कहीं भी औपनिवेशिक स्वराज्य की स्थापना की बात नहीं कहीं गई।

सविनय अवज्ञा आन्दोलन :–

30 दिसम्बर 1929 ई. के कांग्रेस अधिवेशन में पण्डित जवाहर लाल नेहरू की अध्यक्षता में कांग्रेस ने पूर्ण स्वराज्य का प्रस्ताव पास किया। पूर्ण स्वराज्य के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए

गाँधी जी ने 78 सदस्यों के साथ साबरमती आश्रम से 200 किलोमीटर दूर गुजरात में समुद्र के तट पर स्थित डाण्डी गाँव के लिए पैदल चले। 6 अप्रैल 1930 ई. डाण्डी पहुँच कर नमक बना कर अंग्रेजी कानून को तोड़ा। इस आन्दोलन में गैर कानूनी नमक बनाने, महिलाओं द्वारा शराब की दुकानों, अफीम के ठेकों, विदेशी कपड़ों की दुकानों पर धरना देना, विदेशी वस्त्रों को जलाना, चरखा कातना, छुआछूत से दूर रहना, विद्यार्थियों द्वारा सरकारी स्कूल, कॉलेज छोड़ना तथा सरकारी कर्मचारियों को नौकरियों से त्याग पत्र देने का आह्वान गाँधीजी ने किया। यह आन्दोलन तेजी से पूरे भारत में फैल गया। देश भर में जनता हड़तालों, प्रदर्शनों और विदेशी वस्त्रों के बहिष्कार में भाग लेने लगी। इस आन्दोलन की विशेषता यह थी कि इसमें महिलाओं ने भी भाग लिया। थोड़े समय में ही 60,000 लोग जेलों में डाल दिये गये।

5 मार्च 1931 को सरकार और कांग्रेस के मध्य गाँधी–इरविन समझौता हुआ। वायसराय ने इस बात की घोषणा की कि भारतीय संवैधानिक विकास का उद्देश्य भारत को डोमिनियन स्टेट्स देना है। गाँधी जी ने भारतीय संवैधानिक सुधारों के लिए, बुलाए गये दूसरे गोलमेज सम्मेलन में भाग लिया। वे वहाँ से निराश लौटे और पुनः 1932 ई. में सविनय अवज्ञा आन्दोलन प्रारम्भ किया। 1933 में गाँधी जी ने अपने आन्दोलन की असफलता को स्वीकार कर लिया और कांग्रेस की सदस्यता से त्याग पत्र दे दिया।

व्यक्तिगत सत्याग्रह :–

द्वितीय विश्वयुद्ध प्रारम्भ हो गया था। भारत को युद्ध में सम्मिलित करने के खिलाफ देश के विभिन्न भागों में हड़ताल व प्रदर्शन हो रहे थे। तभी गाँधी जी ने सत्याग्रह के बजाय व्यक्तिगत सत्याग्रह का प्रस्ताव रखा जिसे कांग्रेस ने स्वीकार कर लिया। 17 अक्टूबर 1940 ई. को कांग्रेस ने व्यक्तिगत सत्याग्रह आन्दोलन शुरू किया। गाँधी जी द्वारा चुने सत्याग्रही एक–एक करके सार्वजनिक स्थलों पर पहुँचेंगें, युद्ध के खिलाफ भाषण देगें और गिरफ्तारी देगें। विनोबा भावे पहले सत्याग्रही थे, जिन्हें तीन माह की सजा दी गई। जवाहर लाल नेहरू दूसरे, ब्रह्मदत्त तीसरे सत्याग्रही थे। इस व्यक्तिगत सत्याग्रह में 30000 लोग पकड़े गये।

भारत छोड़ो आन्दोलन :–

क्रिप्स मिशन की असफलता, जापान का भारत पर आक्रमण का भय, 14 जूलाई 1942 के वर्धा कांग्रेस बैठक में कांग्रेस कार्यकारिणी के निर्णय आदि के कारण 8 अगस्त 1942 ई को बम्बई में अखिल भारतीय कांग्रेस समिति की बैठक में गाँधी जी के ''भारत छोड़ो प्रस्ताव'' को स्वीकार कर लिया। इस संदर्भ में उन्होंने कहा कि अब मैं आपको एक छोटा सा मंत्र दे रहा हूँ वह मंत्र है 'करो या मरो''। हम या तो भारत को स्वतन्त्र करायेगें या इस प्रयास में मारे जायेंगे, मगर हम अपनी पराधीनता को जारी रहते देखने के लिए जिन्दा नहीं रहेंगे। 9 अगस्त की भोर से पहले ही गाँधी जी सहित दूसरे कांग्रेसी नेता गिरफ्तार कर लिये गये तथा कांग्रेस को गैर कानूनी संस्था घोषित कर दिया गया।

इस आन्दोलन की कोई निश्चत योजना नहीं बनाई गई थी। इस आन्दोलन में शान्तिपूर्ण हड़ताल करना, सार्वजनिक सभायें करना, लगान देने से मना करना तथा सरकार का असहयोग करने की बात कही गई। इस आन्दोलन को गाँधी जी ने अन्तिम संघर्ष बताया था। अतः जनता ने जिस ढ़ंग से ठीक समझा, अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त की। पूरे देश में एक स्वतः स्फूर्त आन्दोलन उठ खड़ा हुआ। कारखाने, स्कूलों और कॉलेजों में हड़तालें और कामबंदी हुई। पुलिस थानों डाकखानों, रेल्वे स्टेशनों पर हमले किये गये। कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के अधिकांश नेता गिरफ्तारी से बच गये थे। इसके नेताओं ने भूमिगत रह कर आन्दोलन चलाया, जिनमें जयप्रकाश नारायण, राममनोहर लोहिया, अच्युत पटवर्धन, रामानन्द मिश्रा, एस.एम.जोशी प्रमुख थे। इस आन्दोलन में जयप्रकाश नारायण की महत्वपूर्ण भूमिका रही। अरूणा आसफ अली ने बम्बई में इस आन्दोलन का सफल नेतृत्व किया। इस आन्दोलन के दौरान अनेक शहरों, कस्बों और गाँवों में आन्दोलनकारियों ने समानान्तर सरकार भी बना ली थी। इस आन्दोलन का भी दमन कर दिया। इस आन्दोलन में गोलीबारी में 10000 से अधिक लोग मारे गये। विद्रोही गाँवों को जुर्माने के रूप में बहुत से रूपये देने पड़े। सरकार ने इस आन्दोलन की हिंसा का उत्तरदायित्व गाँधीजी पर थोप दिया।

इस आन्दोलन ने भारत की आजादी का मार्ग प्रशस्त कर दिया। भारतीयों में वीरता, उत्साह, शौर्य और देश के लिए सर्वस्व त्याग की भावना जागृत की। देश में नेतृत्व की एक नई पीढ़ी आगे आई, जिससे लोगों में संघर्ष करने की हिम्मत और शक्ति बढ़ गई। अब भारत सम्पूर्ण स्वतन्त्रता से कम कुछ नहीं चाहता था।

राजस्थान के जनजातीय, किसान एवं प्रजामण्डल आन्दोलन

राजस्थान में जनजातीय एवं किसान आन्दोलन :– राजस्थान में राजनीतिक चेतना का प्रारम्भ यहां के किसानों व जनजातीय समाज ने किया। जब यहाँ के किसानों पर अत्यधिक वित्तीय बोझ डाला गया तो यहां किसानों ने विरोध शुरू कर तत्कालीन राजनीतिक व्यवस्था को चुनौती दे डाली। राजस्थान के आदिवासी क्षेत्रों में ये आन्दोलन स्वतः स्फूर्त थे, जो अन्याय व अनावश्यक उत्पीडन के विरूद्ध शुरू हुए एवं भावी राजनीतिक आन्दोलन के प्रेरणा के सूत्र बने। राजस्थान के दक्षिणी क्षेत्र मुख्यतः डूँगरपुर, मेवाड, प्रतापगढ, बांसवाडा व कुशलगढ़ क्षेत्र में भील निवास करते थे। भील अत्यन्त परम्परावादी आदिवासी जाति है जो अपने सामाजिक व आर्थिक स्तर को लेकर सजग रहती है। जब इनके परम्परागत अधिकारों का हनन होने लगा तो इन्होंने शासकों और अंग्रेजो के विरूद्ध विद्रोह कर दिया।

भगत आन्दोलन :–

भीलों को सामाजिक व नैतिक उत्थान के लिए गोविन्द गुरू ने सम्प सभा स्थापित की व उन्हें हिन्दू धर्म के दायरे में बनाये रखने के लिए भगत पंथ की स्थापना की। सम्प सभा द्वारा मेवाड़ डूंगरपुर, ईडर, गुजरात, विजयनगर और मालवा के भीलों में सामाजिक जागृति से शासन संशकित हो उठा, और भीलों को

भगत पंथ छोडने के लिए विवश किया जाने लगा। जब भीलों को बेगार कृषि कार्य के लिए बाध्य किया और जंगलों में उनके मूलभूत अधिकारों से वंचित किया गया तो उन्होंने आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया। अंग्रेजो ने गोविन्द गुरू द्वारा चलाये जा रहे इस सामाजिक सुधार व संगठन के पीछे भील राज्य की स्थापना की संभावना व्यक्त की। गोविन्द गुरू को अप्रैल 1913 ई. को डूँगरपुर राज्य द्वारा गिरफ्तार कर लिया गया, लेकिन बाद में छोड दिया गया। गोविन्द गुरू अपने साथियों के साथ मानगढ की पहाड़ियों पर चले गये। अक्टूबर 1913 ई. को अपने संदेश द्वारा भीलों को मानगढ की पहाड़ी पर एकत्रित होने को कहा। भील हथियारों सहित बडी संख्या में एकत्रित हुए। भीलों की एकता से भयभीत अंग्रेजों ने सेना भेजी, जिसने मानगढ की पहाड़ी पर पहुँच कर गोला बारी कर भीलों को तितर बितर कर दिया। सरकारी आकड़ों के अनुसार इस कार्यवाही में 1500 भील मारे गये। इस प्रकार भगत आन्दोलन को निर्ममता पूर्वक कुचल दिया गया तथा गोविन्द गुरू को 10 वर्ष के कारावास की सजा दी गई।

एकी आन्दोलनः—

भगत आन्दोलन को कुचलने के बाद भी भीलों के विरूद्ध सरकारी नीति जारी रही। 1917 ई. में भीलों व गरासियों ने मिलकर महाराणा को पत्र लिख कर दमनकारी नीति व बेगार के प्रति अपना विरोध जताया। लेकिन परिणाम नहीं निकला तो भीलों ने मोतीलाल तेजावत के नेतृत्व में आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया। यह आन्दोलन एकी आन्दोलन के नाम से विख्यात हुआ।

किसान आन्दोलन :—

राजस्थान की राजनीतिक, सामाजिक व आर्थिक संरचना सामंती रही है। यह संरचना त्रिस्तरीय थी जिसमें क्रमशः शासक, जागीरदार व कृषक वर्ग सम्मिलित थे। इन सभी के पारस्परिक अंतर्सम्बन्धों पर यह व्यवस्था टिकी थी। 19 वीं शताब्दी के अंत तक ये संबंध सौहार्द्र पूर्ण बने रहे मगर इसके बाद राजस्थान का परिदृश्य बदलना आरम्भ हो गया। इसका परिणाम यह हुआ कि राजस्थान के विभिन्न भागों को अनेक किसान आन्दोलनों का सामना करना पड़ा। इन किसान आन्दोलनों के प्रमुख कारण निम्नलिखित थे –

(1) अंग्रेजों के प्रभाव में आकर शासकों ने अपनी प्रजा की ओर पर्याप्त ध्यान देना छोड़ दिया। शासकों व जागीरदारों ने स्वयं का अस्तित्व ही ब्रिटिश सत्ता पर आधारित समझ लिया। इसलिए शासकों की निर्भरता जागीरदारों पर व जागीरदारों की निर्भरता कृषकों पर समाप्त होती चली गई।

(2) राजस्व अधिक वसूलने के साथ—साथ ही कृषकों से ली जाने वाली बेगारों व लागों में भी अप्रत्याशित वृद्धि देखी गई। कुछ राज्यों में तो इन लागों की संख्या 300 से अधिक थी।

(3) इस काल में अन्य व्यवसायों से विस्थापित लोगों के कृषि पर निर्भर हो जाने के कारण कृषक मजदूरों की संख्या में वृद्धि हुई। कृषक मजदूरों की संख्या में वृद्धि होने के कारण जागीरदारों के रूख में अधिक कठोरता आ गई।

(4) कृषि उत्पादित मूल्यों में गिरावट व इजाफा दोनों स्थितियां कृषकों के लिए लाभकारी नहीं थे। जहां एक ओर कीमत में गिरावट के कारण कृषकों की बचत का मूल्य कम हो जाता था, वहीं कीमतें बढ़ने के कारण भी उसे लाभ का भाग नहीं मिल पाता था क्योंकि जागीरदार लगान जिन्स के रूप में लेता था।

(5) अंग्रेजी प्रशासनिक व्यवस्थाओं को अपनाने के फलस्वरूप सामंतों का कृषकों के प्रति उदार व पैतृक नजरिया बदल गया।

बिजौलिया किसान आन्दोलन (भीलवाड़ा) –

बिजौलिया किसान आन्दोलन राजस्थान के अन्य किसान आन्दोलनों का अगुवा रहा। यहाँ के किसानों में अधिकांश धाकड़ जाति के थे। 1894 ई. में बिजौलिया के राव गोविन्ददास की मृत्यु तक किसानों को जागीरदार के खिलाफ कोई विशेष शिकायत नहीं थी। 1894 ई. में बने नये जागीरदार कृष्णसिंह (किशन सिंह) ने किसानों के प्रति ठिकाने की नीति व जागीर प्रबन्ध में परिवर्तन किए। इसके समय में लगभग 84 प्रकार की लाग—बागों के द्वारा किसानों से उनकी मेहनत की कमाई का लगभग 87 प्रतिशत भाग जागीरदार ले लिया करता था। इसके बाद भी उनसे बेगार अलग से करवाई जाती थी।

1897 ई. में गिरधरपुरा नामक गांव में गंगाराम धाकड़ के पिता के मृत्युभोज के अवसर पर हजारों किसानों ने अपने कष्टों की खुलकर चर्चा की और मेवाड़ महाराणा को उनसे अवगत करवाया। महाराणा ने सुनवाई के बाद किसानों की लागत और बेगार संबंधी शिकायतों की जाँच के लिए सहायक राजस्व अधिकारी हामिद हुसैन को नियुक्त किया। हामिद हुसैन ने ठिकाने के विरुद्ध महकमा खास में रिपोर्ट दी किन्तु उसका कोई परिणाम नहीं निकला। राज्य की तरफ से ठिकाने को मात्र एक—दो लागतें कम करने को कहा गया। इससे राव कृष्णसिंह का हौंसला बढ़ गया।

विभिन्न प्रकार की लागों व 1899—1900 ई. के भयंकर दुर्भिक्ष (छप्पनिया अकाल) के कारण बिजौलिया के किसानों की स्थिति पहले से ही काफी दयनीय थी। इसके बावजूद 1903 ई. में राव कृष्णसिंह ने किसानों पर 'चँवरी कर' नामक एक नया कर और लगा दिया। इसमें हर व्यक्ति को अपनी लड़की के विवाह के अवसर पर पाँच रूपये ठिकाने के कोष में जमा करवाना पड़ता था। चँवरी कर बिजोलियावासियों के लिए आर्थिक रूप से तो भारस्वरूप था ही, साथ ही साथ सामाजिक रूप से घोर अपमानजनक भी था। किसानों ने इसका मौन विरोध किया और दो वर्ष तक अपनी कन्याओं का विवाह नहीं किया। किसानों के प्रतिरोध के आगे राव को चंवरी की लाग उठा देने, फसल में ठिकाने का हिस्सा 2/5 लेने, कूंता करने वाले अहलकारों के साथ बीसियों आदमियों को न बुलाने की घोषणा करनी पड़ी।

1906 ई. में बिजौलिया के नए स्वामी पृथ्वीसिंह ने न केवल पुरानी रियायतों को समाप्त कर दिया बल्कि प्रजा पर 'तलवार बँधाई' नामक नया कर लगा दिया। राव पृथ्वीसिंह के समय जब लूट और शोषण चरम सीमा को पार कर गया तो 1913 ई. में किसानों ने साधु सीतारामदास, फतहकरण चारण और ब्रह्मदेव के

नेतृत्व में जागीर क्षेत्र में हल चलाने से इंकार कर दिया। जागीर क्षेत्र की भूमि पड़त रहने के कारण ठिकाने को बड़ी हानि उठानी पड़ी। इसके बाद ठाकुर द्वारा की जाने वाली सख्ती व अत्याचारों में और वृद्धि हो गई। फतहकरण चारण व ब्रह्मदेव आतंकित होकर बिजौलिया छोड़कर चले गए तथा साधु सीतारामदास को पुस्तकालय की नौकरी से अलग कर दिया गया।

साधु सीतारामदास द्वारा आमंत्रित करने के बाद विजयसिंह पथिक ने आन्दोलन का नेतृत्व संभाला और 1917 ई. में हरियाली अमावस्या के दिन बैरीसाल गाँव में 'ऊपरमाल पंच बोर्ड' नामक एक संगठन स्थापित कर उसके तत्त्वावधान में आन्दोलन का श्रीगणेश किया गया। तिलक ने किसानों की वीरता और संगठन से प्रभावित होकर न केवल अपने अंग्रेजी पत्र 'मराठा' में बिजौलिया के बारे में एक सम्पादकीय लिखा अपितु मेवाड़ के महाराणा फतेहसिंह को भी पत्र लिखा कि 'मेवाड़ के राजवंश ने स्वतन्त्रता के लिए बहुत बलिदान किए है। आप स्वयं स्वतन्त्रता के पुजारी हैं, अतएव आपके राज्य में स्वतन्त्रता के उपासकों को जेल में डालना कलंक की बात है।' बिजौलिया के किसानों को जागृत करने के लिए एक ओर माणिक्यलाल वर्मा द्वारा रचित 'पंछिड़ा' गीत गाया जा रहा था, वहीं दूसरी ओर प्रज्ञाचक्षु भंवरलाल स्वर्णकार भी अपनी कविताओं के माध्यम से गांव–गांव में अलख जगा रहे थे। पथिक ने भी बिजौलिया के आस–पास के इलाके के युवकों में देशभक्ति की भावना भरने के उद्देश्य से इस समय 'ऊपरमाल सेवा समिति' नामक संगठन की स्थापना की तथा 'ऊपरमाल का डंका' नाम से पंचायत का एक पत्र भी निकलवाया। आन्दोलन को देशभर में चर्चित करने के लिए पथिक ने किसानों की तरफ से कानपुर से निकलने वाले समाचार–पत्र 'प्रताप' के सम्पादक गणेश शंकर विद्यार्थी को चाँदी की राखी भेजी। गणेश शंकर विद्यार्थी ने राखी स्वीकार करते हुए आन्दोलन को समर्थन करने का आश्वासन दिया। 'प्रताप' समाचार–पत्र ने बिजौलिया किसान आन्दोलन को राष्ट्रीय पहचान दिलाई। प्रेमचन्द के उपन्यास 'रंगभूमि' में मेवाड़ के जन–आन्दोलन का जो चित्रण किया गया है, वह बिजौलिया किसान आन्दोलन का ही प्रतिबिम्ब है।

उदयपुर राज्य सरकार ने अप्रैल, 1919 ई. में बिजौलिया के किसानों की शिकायतों की सुनवाई करने के लिए मांडलगढ़ हाकिम बिन्दुलाल भट्टाचार्य की अध्यक्षता में एक आयोग का गठन किया। आयोग ने किसानों के पक्ष में अनेक सिफारिशें की किन्तु मेवाड़ सरकार द्वारा इस तरफ कोई ध्यान नहीं दिए जाने के कारण आन्दोलन पूर्ववत् जारी रहा। भारत सरकार के विदेश विभाग के अधिकारियों का मत था कि बिजौलिया किसान पंचायत के साथ शीघ्र समझौता किया जाना आवश्यक है, अन्यथा सम्पूर्ण राजपूताने में किसान आन्दोलन उग्र हो सकता है। ऐसी स्थिति में बिजौलिया आन्दोलन को तुरन्त शांत करने के उद्देश्य से राजस्थान के ए. जी. जी. रॉबर्ट हॉलैंड की अध्यक्षता में एक उच्चस्तरीय समिति का गठन किया। फरवरी 1922 में रॉबर्ट हॉलैंड ने किसानों से वार्ता कर 35 लागतों को माफ कर दिया। दुर्भाग्य से ठिकाने की कुटिलता के कारण यह समझौता स्थायी नहीं हो सका।

1927 ई. के नए बन्दोबस्त के विरोध में किसानों ने ठिकाने पर दबाव बनाने के लिए विजयसिंह पथिक के परामर्श के बाद लगान की ऊँची दरों के विरोध में अपनी माल भूमि छोड़ दी। मगर किसानों की धारणा के विपरित ठिकाने द्वारा भूमि की नीलामी किये जाने पर भूमि को लेने वाले नये किसान मिल गये। किसानों द्वारा भूमि छोड़ने के फैसले के लिए पथिक को उत्तरादायी ठहराया गया, जिसके बाद उन्होंने अपने को इस आन्दोलन से अलग कर लिया। इसके बाद किसानों ने अपनी भूमि को वापिस प्राप्त करने के लिए आन्दोलन जारी रखा जो 1941 तक चलता रहा।

सीकर किसान आन्दोलन –

किसान आन्दोलन का प्रारम्भ सीकर ठिकाने के नए रावराजा कल्याणसिंह द्वारा 25 से 50 प्रतिशत तक भू–राजस्व वृद्धि करने से हुआ। 1922 ई. में उसने पूर्व रावराजा के दाह–संस्कार तथा स्वयं के गद्दीनशीनी समारोह पर अधिक खर्च का बहाना बनाकर इस वायदे पर लगान वृद्धि की कि अगले वर्ष लगान में रियायत दे दी जायेगी, किन्तु 1923 ई. में रावराजा रियायत देने सम्बन्धी अपने पुराने वायदे से मुकर गया। राजस्थान सेवा संघ के मंत्री रामनारायण चौधरी के नेतृत्व में किसानों ने इसके विरुद्ध आवाज उठाई। लंदन से प्रकाशित होने वाले 'डेली हेराल्ड' नामक समाचार–पत्र में किसानों के समर्थन में लेख छपे और 1925 में ब्रिटिश संसद के निचले सदन 'हाऊस ऑफ कामंस' में लिचेस्टर (पश्चिम) से लेबर सदस्य सर पैथिक लारेंस ने किसानों के समर्थन में आवाज उठाई।

1931 ई. में 'राजस्थान जाट क्षेत्रीय सभा' की स्थापना के बाद किसान आन्दोलन को नई ऊर्जा मिली। किसानों को धार्मिक आधार पर संगठित करने के लिए ठाकुर देशराज ने पथैना में एक सभा कर ''जाट प्रजापति महायज्ञ'' करने का निश्चय किया। बसंत पंचमी 20 जनवरी 1934 को सीकर में यज्ञाचार्य पं. खेमराज शर्मा की देखरेख में यह यज्ञ आरम्भ हुआ। यज्ञ की समाप्ति के बाद किसान यज्ञपति कुं. हुक्मसिंह को हाथी पर बैठाकर जुलूस निकालना चाहते थे किन्तु रावराजा कल्याणसिंह और ठिकाने के जागीरदार इसके विरुद्ध थे। इसका कारण यह था कि ठिकाने का शासक और जागीरदार किसानों को सामाजिक प्रतिष्ठा की दृष्टि से अपने से हीन मानते थे और हाथी पर सवार होकर निकाले जाने वाले जुलूस को अपना विशेषाधिकार मानते थे। इस कारण सीकर ठिकाने ने यज्ञ की पहली रात हाथी को चुरा लिया। हाथी चुराने की घटना ने वहाँ उपस्थित लोगों में रोष पैदा करने का कार्य किया और माहौल तनावपूर्ण हो गया। प्रसिद्ध किसान नेता छोटूराम ने जयपुर महाराजा को तार द्वारा सूचित किया कि एक भी किसान को कुछ हो गया तो अन्य स्थानों पर भारी नुकसान होगा और जयपुर राज्य को गंभीर परिणाम भुगतने पड़ेंगे। अंततः किसानों की जिद के आगे सीकर ठिकाने को झुकना पड़ा और स्वयं ठिकाने ने जुलूस के लिए सजा–सजाया हाथी प्रदान किया। सात दिन तक चलने वाले इस यज्ञ कार्यक्रम में स्थानीय लोगों सहित उत्तरप्रदेश, पंजाब, लुहारू, पटियाला और हिसार जैसे स्थानों से

लगभग तीन लाख लोग उपस्थित हुए। बीसवीं शताब्दी में राजपूताने में होने वाला यह सबसे बड़ा यज्ञ था।

सीकर किसान आन्दोलन में महिलाओं की महत्वपूर्ण भूमिका रही। सिहोट के ठाकुर मानसिंह द्वारा सोतिया का बास नामक गाँव में किसान महिलाओं के साथ किए गये दुर्व्यवहार के विरोध में 25 अप्रेल, 1934 ई. को कटराथल नामक स्थान पर श्रीमती किशोरी देवी की अध्यक्षता में एक विशाल महिला सम्मेलन का आयोजन किया गया। सीकर ठिकाने ने उक्त सम्मेलन को रोकने के लिए धारा–144 लगा दी। इसके बावजूद कानून तोड़कर महिलाओं का यह सम्मेलन हुआ। इस सम्मेलन में बड़ी सख्या में महिलाओं ने भाग लिया जिनमें श्रीमती दुर्गादेवी शर्मा, श्रीमती फूलांदेवी, श्रीमती रमादेवी जोशी, श्रीमती उत्तमादेवी आदि प्रमुख थी। 25 अप्रैल 1935 को जब राजस्व अधिकारियों का दल लगान वसूल करने के लिए कूदन गांव पहुँचा तो एक वृद्ध महिला धापी दादी द्वारा उत्साहित किए जाने पर किसानों ने संगठित होकर लगान देने से इंकार कर दिया। पुलिस द्वारा किसानों के विरोध का दमन करने के लिए गोलियाँ चलाई गई जिसमें चार किसान – चेतराम, टीकूराम, तुलछाराम तथा आशाराम शहीद हुए और 175 को गिरफ्तार किया गया। इस विभत्स हत्याकाण्ड के बाद सीकर किसान आन्दोलन की गूंज एक बार फिर ब्रिटिश संसद में सुनाई दी। 1935 ई. के अंत तक किसानों की अधिकांश मांगे स्वीकार कर ली गई। आन्दोलन का नेतृत्व करने वाले प्रमुख नेताओं में सरदार हरलालसिंह, नेतरामसिंह गौरीर, पन्नेसिंह बाटड़ानाउ, हरूसिंह पलथाना, गोरूसिंह कटराथल, ईश्वरसिंह भैंरूपुरा, लेखराम कसवाली आदि शामिल थे।

किसान आन्दोलन (चित्तौड़गढ़) बेगूं –

बिजौलिया किसान आन्दोलन से प्रेरित होकर बेगूं ठिकाने के कृषकों ने भी 1921 में आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया, क्योंकि वहां के लोग भी लगान व लाग–बाग के अत्याचारों से पीड़ित थे। बेगूं ठिकाने के किसान भी बिजोलिया की तरह ही अधिकांशतः धाकड़ जाति के थे। वे विभिन्न लागतों, बेगार, लगान की ऊँची दरों व ठिकाने के अत्याचारों की चक्की में पिस रहे थे। राजस्थान सेवा संघ के सदस्यों – विजयसिंह पथिक, रामनारायण चौधरी और माणिक्यलाल वर्मा के सतत् प्रयत्नों से बेंगूं के किसानों में जागृति का संचार हुआ।

1921 में मेनाल में भैंरोंकुंड पर एकत्र होकर बेगूं के पट्टे के किसानों की सभा हुई। बिजौलिया आन्दोलन की उग्रता से प्रभावित बेगूं के किसानों ने पथिक से मिलकर लागबाग, बेगार और ऊँचे लगान के विरूद्ध आन्दोलन का नेतृत्व करने की प्रार्थना की। पथिक ने इस आन्दोलन का भार राजस्थान सेवा संघ के मंत्री रामनारायण चौधरी पर डाल दिया।

दो वर्षों के संघर्ष के बाद बेगूं ठाकुर रावत अनूपसिंह को झुकना पड़ा। उसने किसानों की मांगों को स्वीकार करते हुए एक समझौता कर लिया। परन्तु मेवाड़ सरकार और रेजिडेन्ट को यह बात नहीं भायी। उन्होंने राजस्थान सेवा संघ और रावल अनूपसिंह के बीच हुए समझौते को 'बोल्शेविक' फैसले की संज्ञा दी और अनूपसिंह को उदयपुर में नजरबंद कर ठिकाने पर मुंसरमात बैठा दी।

ठिकाने ने किसानों की शिकायतों के समाधान के लिए मेवाड़ के बन्दोबस्त आयुक्त ट्रेंच के नेतृत्व में एक आयोग नियुक्त किया। बेगूं के किसान ट्रेंच के निर्णय पर विचार करने के लिए गोविन्दपुरा में एकत्र हुए। यहां पांच माह से लगभग 600 किसान पंच डटे हुए थे। ट्रेंच व लाला अमृतलाल ने गोविन्दपुरा पहुंच कर एकत्र किसानों को आयोग द्वारा दिए गए निर्णय को स्वीकार करने तथा तितर–बितर हो जाने का आदेश दिया, किन्तु किसान डटे रहे। 13 जुलाई, 1923 ई. को किसानों पर गोलियाँ चलाई गई जिसमें रूपाजी और कृपाजी धाकड़ नामक दो किसान शहीद हो गए। महिलाओं को अपमानित किया गया तथा पाँच सौ से ज्यादा किसानों को गिरफ्तार कर लिया गया। राज्य के अत्याचारों से किसानों का मनोबल गिरता देख पथिक ने गुप्त रूप से बेगूं पहुंचकर स्वयं किसान आन्दोलन का नेतृत्व संभाल लिया। मेवाड़ सरकार द्वारा इन्हें 10 सितम्बर, 1923 ई. को गिरफ्तार कर जेल में डाल दिया गया जिसके बाद आन्दोलन धीरे–धीरे समाप्त हो गया।

बरड़ किसान आन्दोलन (बूंदी) –

बिजौलिया और बेगूं के किसानों के समान बून्दी राज्य के किसानों को भी अनेक प्रकार की लागतें, बेगार और ऊँची दरों पर लगान की रकम देनी पड़ती थी। इससे त्रस्त बिजौलिया की सीमा से जुड़े बून्दी राज्य के बरड़ क्षेत्र के किसानों ने बून्दी प्रशासन के विरूद्ध अप्रैल, 1922 ई. में आन्दोलन का श्रीगणेश कर दिया। इस आन्दोलन का नेतृत्व 'राजस्थान सेवा संघ' के कर्मठ कार्यकर्ता नयनूराम शर्मा के हाथों में था। 2 अप्रैल, 1923 ई. को डाबी गाँव में नयनूराम शर्मा की अध्यक्षता में चल रही किसानों की सभा पर पुलिस अधीक्षक इकराम हुसैन के नेतृत्व में गोलियाँ चलाई गई जिसमें नानक भील और देवलाल गुर्जर शहीद हुए। 27 सितम्बर, 1925 ई. को राजस्थान सेवा संघ की हाड़ौती शाखा की एक सभा में शासन को किसानों की समस्याओं से परिचित करवाने के लिए पं. नयनूराम शर्मा को अधिकृत किया गया। 1927 ई. के बाद राजस्थान सेवा संघ अंतर्विरोधों के कारण बंद हो गया। अतः राजस्थान सेवा संघ के साथ ही बूँदी का बरड़ किसान आन्दोलन समाप्त हो गया।

नीमूचणा किसान आन्दोलन (अलवर) –

अलवर में सूअरों को मारने पर प्रतिबन्ध था और ये सूअर किसानों की फसल को बर्बाद कर देते थे। इन सूअरों के उत्पात से दुखी होकर 1921 ई. में अलवर के किसानों ने आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया। इस आन्दोलन के दबाव में महाराजा को सूअरों को मारने की इजाजत देनी पड़ी। अलवर में 1922 ई. में तीसरा भूमि बन्दोबस्त होने के बाद 1923–24 ई. में भू–राजस्व की नई दरें लागू कर दी गई। इस नये बन्दोबस्त से पूर्व राजपूत एवं ब्राह्मणों से अन्य जातियों की तुलना में कम भू–राजस्व लिया जाता था। मगर नये बन्दोबस्त द्वारा इन जातियों के विशेषाधिकारों को समाप्त कर दिया गया, जिसके कारण इनमें असंतोष के स्वर उठना स्वाभाविक था। यद्यपि अन्य जातियों के किसान भी इस बन्दोबस्त से संतुष्ट

नहीं थे मगर इसके विरोध में नेतृत्वकारी भूमिका राजपूतों ने निभाई। अलवर के बानसूर और गाजी का थाना के राजपूतों ने भूमि बन्दोबस्त के नाम पर लगने वाले इन करों का विरोध किया और रेजीडेन्ट से शिकायत भी की। इस प्रकार की शिकायत करने से महाराजा जयदेवसिंह बहुत क्रोधित हुए।

14 मई, 1925 ई. को भू–राजस्व के नाम पर होने वाली इस लूट पर चर्चा करने के लिए किसान अलवर की बानसूर तहसील के नीमूचणा नामक गांव में एकत्रित हुए। एकाएक राज्य की सेना ने कमाण्डर छज्जूसिंह के नेतृत्व में इन किसानों को घेरकर गोलियों की बौछार कर दी तथा उनके घर जला दिए। इस घटना में 156 व्यक्ति मारे गए और लगभग 600 व्यक्ति घायल हुए। 'रियासत' नामक समाचार–पत्र ने इस हत्याकाण्ड की तुलना जलियांवाला बाग हत्याकाण्ड से की, जबकि महात्मा गांधी ने 'यंग इण्डिया' में इस हत्याकाण्ड को 'दोहरी डायरशाही' की संज्ञा दी और इसे जलियांवाला बाग हत्याकाण्ड से भी अधिक वीभत्स बताया।

राजस्थान में प्रजामण्डल आन्दोलन

बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक दशकों में राजस्थान के विभिन्न भागों में सामन्ती अत्याचारों एवं शोषण के विरूद्ध अनेक आन्दोलन शुरू हो गए थे किन्तु इन आन्दोलनों का उद्देश्य केवल भू–राजस्व में कमी एवं सामन्ती अत्याचारों से मुक्ति प्राप्त करना ही था। 1920 ई. में कांग्रेस द्वारा देशी रियासतों के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप न करने का प्रस्ताव पारित होने से राजपूताना के राष्ट्रवादी लोगों को मायूस होना पड़ा। 1927 में अखिल भारतीय देशी राज्य लोक परिषद की स्थापना होने के बाद राजनीतिक कार्यकर्ताओं को एक ऐसा मंच मिल गया जहां वे अपनी बात कह सकते थे। इस संस्था की स्थापना व प्रथम अधिवेशन 16–18 दिसम्बर, 1927 ई. को बम्बई में दीवान बहादुर रामचन्द्रराव की अध्यक्षता में आयोजित हुआ। संस्था की कार्यकारिणी में राजस्थान के सात सदस्य – नयनूराम शर्मा (कोटा), शंकरलाल शर्मा (अजमेर), जयनारायण व्यास व कन्हैयालाल कलयंत्री (जोधपुर), रामदेव पोद्दार व बालकिशन पोद्दार (बीकानेर) तथा त्रिलोकचन्द माथुर (करौली) लिए गये। श्री विजयसिंह पथिक संस्था के उपाध्यक्ष तथा श्री रामनारायण चौधरी राजस्थान तथा मध्यभारत के लिए प्रान्तीय सचिव चुने गये। इस संस्था की स्थापना का मुख्य उद्देश्य – भारत की देशी रियासतों में वैध और शांतिपूर्ण उपायों से वहां के राजाओं की छत्रछाया में उत्तरदायी सरकार की स्थापना करना था।

1938 ई. में कांग्रेस के हरिपुरा अधिवेशन में देशी राज्यों के आन्दोलन को समर्थन देने का प्रस्ताव पास होने के बाद विभिन्न देशी रियासतों में प्रजामण्डलों की व्यवस्थित स्थापना हुई। देशी रियासतों में उत्तरदायी शासन की स्थापना, सामन्ती अत्याचारों व शोषण का विरोध, देशी रियासतों में राजनैतिक जागृति पैदा करना और देश में चल रहे राष्ट्रीय आन्दोलन को गति प्रदान करने के लिए जो राजनीतिक संगठन स्थापित हुए, उन्हें प्रजामण्डल कहा गया। राजस्थान की सभी रियासतों में अपने–अपने प्रजामण्डल कार्यरत रहे थे जिन्होंने आजादी तक उपरोक्त मुद्दों पर समय–समय पर अनेक आन्दोलनों का संचालन किया।

प्रमुख प्रजामण्डलों की स्थापना

प्रजामण्डल	वर्ष	संस्थापक
1. जयपुर प्रजामण्डल	1931	जमनालाल बजाज व कपूरचन्द पाटनी
2. बूंदी प्रजामण्डल	1931	कांतिलाल
3. हाड़ौती प्रजामण्डल	1934	पं. नयनूराम शर्मा
4. मारवाड़ प्रजामण्डल	1934	जयनारायण व्यास
5. सिरोही प्रजामण्डल	1934	वृद्धिशंकर त्रिवेदी
6. बीकानेर प्रजामण्डल	1936	मघाराम वैद्य
7. कोटा प्रजामण्डल	1939	पं. नयनूराम शर्मा
8. मेवाड़ प्रजामण्डल	1938	माणिक्यलाल वर्मा
9. अलवर प्रजामण्डल	1938	हरिनारायण शर्मा
10. भरतपुर प्रजामण्डल	1938	किशनलाल जोशी
11. शाहपुरा प्रजामण्डल	1938	रमेशचन्द्र ओझा
12. धौलपुर प्रजामण्डल	1938	ज्वालाप्रसाद जिज्ञासु
13. करौली प्रजामण्डल	1938	त्रिलोकचन्द माथुर
14. किशनगढ़ प्रजामण्डल	1939	कांतिलाल चौथानी
15. जैसलमेर प्रजामण्डल	1945	मीठालाल व्यास
16. कुशलगढ़ प्रजामण्डल	1942	भंवरलाल निगम
17. डूँगरपुर प्रजामण्डल	1944	भोगीलाल पाण्ड्या
18. बाँसवाड़ा प्रजामण्डल	1945	भूपेन्द्रनाथ त्रिवेदी
19. प्रतापगढ़ प्रजामण्डल	1945	अमृतलाल पायक
20. झालावाड़ प्रजामण्डल	1946	मांगीलाल भव्य

प्रजामण्डल आन्दोलन की सबसे बड़ी उपलब्धि ये थी कि इसने महिलाओं को घर की चारदीवारी से बाहर निकालकर पुरुषों के बराबर खड़ा कर दिया। अनेक महिलाओं ने आन्दोलनों में सक्रिय रूप से भाग लिया और गिरफ्तारियाँ दी। जयपुर प्रजामण्डल के आन्दोलनों में अनेक महिलाओं ने भाग लिया जिनमें रमादेवी देशपाण्डे, सुशीला देवी, इंदिरा देवी, अंजना देवी चौधरी आदि प्रमुख थीं। भारत छोड़ो आन्दोलन के दौरान जोधपुर में गोरजा देवी, सावित्री देवी भाटी, सिरेकंवल व्यास, राजकौर व्यास आदि ने गिरफ्तारियाँ दी तो उदयपुर में माणिक्यलाल वर्मा की पत्नी नारायणदेवी अपने 6 माह के पुत्र को गोद में लिए जेल गई। प्रजामण्डलों के कार्यकर्ताओं ने सामाजिक सुधार, शिक्षा प्रसार, बेगार उन्मूलन तथा दलित–आदिवासियों के उत्थान पर भी ध्यान दिया। इन संगठनों ने उत्तरदायी संघर्ष के लिए आन्दोलन चलाए जिससे राजशाही और सामन्ती शोषण से दबी राजस्थान की जनता में राजनैतिक जनजागृति पैदा हुई। 1938 ई. से पहले देशी रियासतों की जनता का राष्ट्रीय आन्दोलन के साथ प्रत्यक्ष सामंजस्य नहीं था किन्तु प्रजामण्डलों की स्थापना के बाद 1942 के भारत छोड़ो आन्दोलन के दौरान यहाँ के स्थानीय आन्दोलन राष्ट्रीय आन्दोलन का हिस्सा बन गए। इससे राष्ट्रीय आन्दोलन को बढ़ावा मिला।

अभ्यास प्रश्न

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्नः—

1. ईस्ट इण्डिया कम्पनी की स्थापना कब हुई थी ?
2. सुर्जीगाँव की सन्धि कब और किस के मध्य हुई ?
3. टीपू सुल्तान कहाँ का शासक था ?
4. अमृतसर की सन्धि कब हुई ?
5. सन्यासी अंग्रेजों से क्यों नाराज थे ?
6. वासुदेव फड़के किस प्रान्त से थे ?
7. बिहार में 1857 ई. की क्रान्ति का नेतृत्व किसने किया ?
8. व्यक्तिगत सत्याग्रह के प्रथम सत्याग्रही कौन थे ?
9. बेगूं का किसान आन्दोलन कब प्रारम्भ हुआ ?

लघूत्तरात्मक प्रश्नः—

1. प्रथम अंग्रेज मराठा संघर्ष का उल्लेख कीजिये।
2. चतुर्थ आंग्ल—मैसूर युद्ध के क्या परिणाम निकले ?
3. विनायक दामोदर सावरकर का स्वतन्त्रता संघर्ष में क्या योगदान है ?
4. चम्पारण किसान आन्दोलन पर टिप्पणी लिखिये।
5. इण्डियन नेशनल कांग्रेस की स्थापना कब और कैसे हुई ?
6. गोविन्द गुरु ने कौनसा आन्दोलन चलाया ?
7. बिजौलिया किसान आन्दोलन को समझाइए।
8. साइमन कमीशन का भारतीयों ने क्यों विरोध किया ?
9. प्रजामण्डलों की राजस्थान में स्थापना क्यों की गई ?

निबन्धात्मक प्रश्नः—

1. मराठों व मैसूर द्वारा अंग्रेजों से किये गये संघर्ष का वर्णन कीजिये।
2. 1857 ई. के प्रथम स्वतन्त्रता संघर्ष का वर्णन कीजिये।
3. 1919 ई. से 1949 ई. तक चलाये गये जन आन्दोलनों का वर्णन कीजिये।
4. भारत के स्वतन्त्रता संघर्ष में क्रान्तिकारियों का योगदान क्या रहा उल्लेख कीजिये ?
5. राजस्थान में किसान आन्दोलनों का वर्णन कीजिये।